विचार दृष्टि

अधिवेशन अंक

वर्ष : 12 | जनवरी-मार्च 2010 | अंक : 42 | मूल्य : 40 रुपए

- नक्सलवाद : समस्या और समाधान
- प्रेस और भारतीय राष्ट्रवाद (1857–1947)
- राष्ट्रीय परिवेश और कौमी एकता
- तिरंगे का दर्द
- अनुवाद में सांस्कृतिक आदान–प्रदान
- संस्कृत, आयुर्वेदीय परंपरा और बिहार

राष्ट्रीय विचार मंच
(का)
तृतीय राष्ट्रीय अधिवेशन
28 एवं 29 नवम्बर 2009 राजेन्द्र भवन, नई दिल्ली

राष्ट्रीय विचार मंच
(का)
तृतीय राष्ट्रीय अधिवेशन
28 एवं 29 नवम्बर 2009 राजेन्द्र भवन, नई दिल्ली

राष्ट्रीय विचार मंच
(का)

विचार दृष्टि

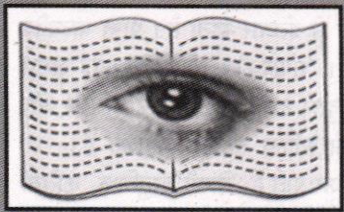

RNI REG.NO. : DEL HIN/1999/791

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका)

वर्ष–12 जनवरी–मार्च 2010 अंक–42

संपादकीय सलाहकार : नंद लाल
संपादक : सिद्धेश्वर
सहायक संपादक : उपेन्द्र नाथ
: डा. मणिकान्त ठाकुर
प्रबंध संपादक : सुधीर रंजन
आवरण साज–सज्जा : हिमांशु एवं अमिताभ

संपादकीय कार्यालय

'दृष्टि', यू 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली–92
फोन : (011) 22530652 / 22059410
मोबाईल : 9811281443 / 9873434086
फैक्स : (011) 42486862

मूल्य

एक प्रति	: 40 रुपये
वार्षिक प्रति	: 150 रुपये
द्विवार्षिक	: 300 रुपये
आजीवन सदस्य	: 1500 रुपये
विदेश में एक प्रति	: US $ 08
वार्षिक	: US $ 32
आजीवन	: US $ 400

पत्रिका–परामर्शी

● अरूण कुमार भगत ● यू.पी. गुप्ता ● पी.के.झा. प्रेम

पत्रिका–परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं। रचनाकारों के विचारों से पत्रिका–परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

रचना और रचनाकार

संपादकीय 3–5
लोकतंत्र की आंतरिक चुनौतियाँ
पाठकीय पन्ना 2
आयुर्वेद
संस्कृत, आयुर्वेदीय परंपरा
और बिहार *–उपेन्द्र नाथ* 6–7
विचार प्रवाह
तिरंगे का दर्द *–जितेन्द्र धीर* 8
राष्ट्रीय परिवेश एवं कौमी एकता 9–10
–श्याम सुंदर गुप्ता
ऑडियो–विडियो युग में 49–51
साहित्य का अस्तित्व *–अरविन्द कुमार*
समाज
स्वस्थ समाज के निर्माण में 11–14
महिलाओं की अपरिहार्य भूमिका
–डॉ. चन्द्रसिंह तोमर 'मयंक'
नक्सलवाद : समस्या और समाधान 46–48
–डॉ जय प्रकाश खरे
कहानी
आत्मबोध *–दीनानाथ साहनी* 15–18
प्रथम डेट *– श्रीमती स्नेह ठाकुर* 30–32
व्यंग्य
स्वारथ के ही कारणे साधुन धरा 19–20
शरीर *– डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना'*
संस्मरण
डॉ. वैद्यनाथ शर्मा : निहायत 21–23
सीधे–साधे और नेक इंसान
–सिद्धेश्वर
जयंती सर गणेश दत्त 24
–सिद्धेश्वर
आलोचना
प्रेस और भारतीय राष्ट्रवाद 25–29
(1857–1947) *–सुबोध कुमार*
अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस
अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस का 33
शताब्दी वर्ष
–श्रीमती नेहा कुमारी एवं उपेन्द्र नाथ
अधिवेशन
राष्ट्रीय विचार मंच का तीसरा 34–36
वार्षिक अधिवेशन–2009
– डॉ. मणिकांत ठाकुर एवं उपेन्द्र नाथ
अनुवाद
अनुवाद में सांस्कृतिक 37–39
आदान–प्रदान *– उपेन्द्र नाथ*
उपन्यास और अनुवाद 40
–उपेन्द्र नाथ
समीक्षा
चिरजीवी महाकाव्य : 41–43
एक अनुशीलन
–डॉ बालशौरि रेड्डी
अग्निसेतु– एक विद्रोही की 44–45
संघर्ष और वेदना गाथा
–नित्यानंद गायेन
गतिविधियाँ 52
भाषा
हिन्दी के प्रति बढ़ती 53–55
उदासीनता : कारण और निवारण
–डॉ. परमानंद पांचाल

कविताएँ

◆ **पराग** *–श्रीमती सुशील जैन* 7
इयाद *–मदन मोहन श्रीवास्तव*
पारसमणि *–देवेन्द्र कुमार मिश्र*
समझ के बदनसीबी *–जय सिंह अलवरी*
◆ **औजार**
–डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना' 20
ग़ज़ल *–डॉ. रामलखन राय*
एन.जी.ओ. *–संतोष कुमार*
◆ **बचपन**–*डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना'* 23
द्विपदियाँ *–डॉ. राम निवास मानव*
हिन्दी की दशा *–निशानाथ अवस्थी 'निःशंक'*
◆ **जयति–जयति–हे दीप!**
–मदन मोहन श्रीवास्तव 24
जोड़ *–शशी बुद्धिराजा*
◆ **चुगने की आदत**
–अशोक सिंघई 29
भोर उषा का प्यार मिला
–डॉ. सुभाष शर्मा 'समदर्शी'
◆ **सुर कैसे मिलाऊँ**
–किरण सिन्हा 39
◆ **होली का आगमन**
–हितेश कुमार शर्मा 43
◆ **अनूदित कवितांश**
–सुरेश काला 45
◆ **आओ गले मिलें**
–नरेश हमिलपुरकर 48
◆ **नेताजी के दौरा**
–उपेन्द्र नाथ 55
◆ **परिस्थितियाँ** 56
–डॉ. रामगोपाल पाण्डेय
ग़ज़ल *–आज़ाद कानपुरी*

Website : www.vicharmanch.com **E-mail : contactus@vicharmanch.com**

प्रिय पाठकों एवं लेखक,

'पाठकीय प्रतिक्रिया' वास्तव में पत्रिका परिवार के लिए एक दर्पण-सा होता है। यही कारण है कि हमें प्रकाशित रचनाओं और समग्र रूप में प्रस्तुति पक्ष पर आपके बेबाक विचारों/उचित प्रस्तावों का बेसब्री से इंतजार रहता है। प्राप्त पाठकीय प्रतिक्रिया एवं प्रस्तावों को हम न केवल प्रकाशित करते, बल्कि उन पर विचार भी करते हैं। 'संपादकीय कोप' का कोई ख़तरा नहीं है। नए स्तंभों की शुरुआत और समय-समय पर संशोधन-परिवर्तन इसका प्रमाण है। दूसरे दशक के सफ़र में पत्रिका और अधिक स्तरीय, पठनीय, संग्रहणीय, सुंदर एवं आकर्षक हो ; इसमें पाठकों और लेखकों का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है।

प्राप्त पाठकीय प्रतिक्रियाओं में से हम केवल उन्हीं प्रतिक्रियाओं आदि को शामिल कर पाते हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठ, कृतियों से संदर्भित संक्षिप्त समीक्षा/टिप्पणी या मार्गदर्शक बिंदु होते हैं। भ्रामक प्रशंसा और ईर्ष्या-दर्शी विचारों के प्रेषण से डाक-ख़र्च जाया होता है।

● *सहायक संपादक*

विचार दृष्टि के वार्षिक अंक–41 को बिलकुल ही नये कलेवर एवं तेवर में पढ़कर अच्छा लगा। यात्रा–वृत्तान्त पढ़कर ऐसा लगा मानो खुद कैलाश–मानसरोवर की यात्रा कर आया। प्रभाष जोशी जैसे कालजयी और ऐतिहासिक पत्रकार पर सम्पादक जी ने बेहद प्रभावी संस्मरण लिखा है। अनुवाद पर परिचयात्मक जानकारी भी संतुलित है। आशा है कि इस नए तेवर एवं कलेवर को जारी रखेंगे।

◆ **नीतू सिंह, कोलकाता**

विचार दृष्टि का स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र विशेषांक, अंक–41 अपने विविध आयामी आलेखों को अपने बिलकुल नए अंदाज में आत्मसात कर बेहद पठनीय एवं संग्रहणीय बन गया है। इसमें भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम और हिन्दी लेख बहुत ही ज्ञानवर्द्धक लगा। 'सर्वोच्च तीर्थ कैलाश–मानसरोवर' शीर्षक यात्रा–वृत्तान्त बेहद आनंददायक लगा। 'शिक्षा और सभ्यता' लेख भी उत्कृष्ट है। हमेशा की तरह संपादकीय बेबाक एवं प्रेरणादायी तो है ही।

◆ **रवि किशोर एवं बबिता किशोर, वापी, गुजरात**

लेखकों से विशेष अनुरोध

- ▼ रचना की छाया/कार्बन प्रति या अस्पष्ट हस्तलिखित प्रति प्रेषित न करें।
- ▼ रचना के मौलिक एवं अप्रकाशित/प्रकाशित होने की सूचना अंकित करें।
- ▼ रचना के अंत में पत्राचार का पूरा पता (दूरभाष सहित) अंकित करें।
- ▼ रचना के साथ पासपोर्ट आकार का फ़ोटो एवं जीवन-वृत्त संलग्न करें।
- ▼ समीक्षा हेतु पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजें अन्यथा केवल प्राप्ति-सूचना ही प्रकाशित की जाएगी।
- ▼ अन्य भाषाओं की कालजयी/उत्कृष्ट रचनाओं का हिंदी अनुवाद प्रकाशनार्थ भेजें।
- ▼ रचना के प्रकाशन से संबंधित जानकारी हेतु जवाबी पत्र अवश्य संलग्न करें।
- ▼ श्रेष्ठकर होगा ई. मेल द्वारा रचनाओं का प्रेषण। रचना Kruti-Dev 010, Walkman- Chanakya 901, 902, 905 फॉन्ट्स में ही टंकण कराकर नीचे लिखे ई-मेल आईडी पर ही भेजें। हम उन्हें प्रकाशन में प्राथमिकता देते हैं।
- ▼ हम युवा एवं नये रचनाकारों को भी प्रोत्साहित करते हैं।

Email : id
krishnaraj74@yahoo.com
upendra74@gmail.com

विचार दृष्टि

समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन (केंद्रीय कानून 1956, नियम 8) के अनुसार विचार दृष्टि से संबंधित विवरण

प्रपत्र-4

प्रकाशक का नामः सिद्धेश्वर
प्रकाशन का स्थानः दिल्ली
प्रकाशन अवधिः त्रैमासिक
मुद्रक का नाम : सिद्धेश्वर
राष्ट्रीयता : भारतीय
पताः 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-110092
मालिक का नाम व पताः सिद्धेश्वर
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-1

मैं सिद्धेश्वर यह प्रमाणित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

(सिद्धेश्वर)

तिथिः 01 जनवरी, 2010

लोकतंत्र की आंतरिक चुनौतियाँ

वर्ष 1947 में आजादी के बाद इस देश के सफल संचालन के लिए संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाई गई और 26 जनवरी, 1950 को गणतंत्र घोषित होते ही इस देश का अपना संविधान लागू हुआ। संविधान केवल एक लिखित दस्तावेज न होकर यह किसी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों का दिग्दर्शक एवं मार्गदर्शक भी होता है। भारतीय संविधान ने अपने छह दशक की यात्रा में राजनीतिक क्षरण की वजह से जो सामाजिक, आर्थिक लक्ष्य तय किए, उन्हें पाने में हम विफल ही नहीं रहे, हम अपने महान नेताओं के महान सपनों पर आधारित विरासत के दस्तावेज संविधान को भी विफल करने पर तुले हुए हैं। हमारे लोकतंत्र ने आमजन के अंदर यह अहसास नहीं कराया है कि वाकई वे इस देश के नियति नियंता हैं। यूँ तो कहने के लिए अवश्य लोकतंत्र व गणतंत्र है, मगर लोक व गण की भूमिका केवल मत देने तक सिमटकर रह गई है। बाद के फैसले में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। कारण कि लोकतंत्र के समक्ष आतंकवाद, नक्सलवाद, माओवाद जैसी बाह्य चुनौतियाँ तो खड़ी हैं ही; वह भ्रष्टाचार, राजनीतिक अपराधीकरण, संप्रदायवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद तथा जातिवाद जैसी आंतरिक चुनौतियों से भी परेशान है। एक ओर जहाँ इस तंत्र के प्रति आम आदमी के बड़े समूह के अंदर अविश्वास घर कर रहा है, तो वहीं दूसरी ओर कुछ इसके खिलाफ विद्रोह की भी मुद्रा अपना चुके हैं। वर्तमान् दौर की भारतीय राजनीति के तहत विधायिका और उसके नेतृत्व में काम करने वाली कार्यपालिका आज इतनी संवेदनहीन और अहंकारी हो चुकी है कि उन्हें आमजन के दुख–दर्द से कोई वास्ता ही नहीं रहा, उनकी समस्याएँ हल करने में कोई रुचि ही नहीं रही और उनके संकटों का कोई अहसास ही नहीं है। निश्चित रूप से भारत जन–गण–मन कार्यपालिका और विधायिका से न केवल निराश है, बल्कि राजनीतिक तंत्र ने कार्यपालिका और विधायिका के उत्कृष्ट मूल्यों को गिराया है। देश में हताशा, निराशा, क्षोभ और आक्रोश का वातावरण है। यहाँ न्यायालय ही धीरज देते हैं जबकि संसदीय जनतंत्र भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र की गिरफ्त में है। राजनीतिक तंत्र पर पूँजी, अपराध, मजहब और माफिया की पकड़ है।

दरअसल, इन साठ वर्षों में हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था को तो बनाए रखा है, लेकिन इस व्यवस्था में तमाम राजनीतिक दलों ने जनता के बीच अपनी प्रतिष्ठा जिस तरह से गंवाई है, वह चिंता का विषय है। चुनाव होते हैं, जनता प्रतिनिधि चुनती है, सरकार बनती है, लेकिन हर बार जनता अपने को पिछली बार से ज्यादा ठगा–सा महसूस करती है। आखिर तभी तो लगभग सवा अरब की आबादी वाले इस देश में इतने सारे नेताओं के बावजूद एक भी ऐसा नेता नहीं है जिसमें नेतृत्व की क्षमता हो ताकि समूचा देश उसके पीछे चल सके। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहेंगे? सत्ता पाने की होड़ में तमाम राजनीतिक दल और उसके नेता भ्रष्टाचार के दलदल में आकंठ डूबते जा रहे हैं। जातिवाद और संप्रदायवाद की काई ने उनकी राजनीति को इतना गंदला कर दिया है कि आज राजनीति शब्द तक से सड़ांध आने लगी है जिसके परिणामस्वरूप साफ छवि और ईमानदार लोग राजनीति से दूर होते जा रहे हैं जो चिंता का विषय है। आजादी के बाद दो–तीन दशक तक जब तक स्वतंत्रता संग्राम में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने वाले लोग राजनीति में रहे तब तक तो कुछ ठीक–ठाक रहा, मगर उनके महाप्रयाण या राजनीति से किनारा करने के बाद इस देश की राजनीति में लगातार गिरावट आई है। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार इस स्तर तक जड़ों में जा चुका है कि उसका विरोध करने की बजाय उसको स्वीकार करके ही विकास की बात की जाने लगी है। सच तो यह है कि राजनीति और राजनेताओं के प्रति जो घृणा, वितृष्णा, संदेह और अविश्वास आम आदमी में भर गया है उसके लिए ये स्वयं भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका– लोकतंत्र के इन तीन स्तंभों में लोकतंत्र अभी तक यदि दिखाई देता है, तो उसका सारा श्रेय न्यायपालिका और लोकतंत्र के चौथे प्रहरी के रूप में चर्चित मीडिया को जाता है, हालाँकि न्यायपालिका और मीडिया पर भी अब उँगलियाँ उठने लगी हैं और वे भी संदेह के घेरे में आ चुके हैं।

वस्तुतः राजनीति में चापलूसी और सिफारिशी प्रवृत्ति ने एक बड़ी विकृति का रूप ले लिया है। ये इतनी गहरे पैठ गई हैं कि अपील, आह्वान आदि करने से कुछ भी असर नहीं पड़ता।

इन विकृतियों की वजह से ही राजनीति में न तो सही सोच वाले लोगों, खासकर युवाओं की भागीदारी हो पा रही है और न ही अन्य वर्गों के लोगों की। विडंबना यह है कि एक ओर इन विकृतियों को हर संभव तरीके से संरक्षण दिया जा रहा है, तो दूसरी ओर यह रट भी लगाई जा रही है कि अच्छे लोग राजनीति में भागीदारी करने के लिए आगे आएँ। दरअसल, राजनीतिक बुराइयों को समाप्त करने के लिए किसी क्रांतिकारी पहल की दरकार है। इस पहल को आक्रामकता के साथ आगे बढ़ाने की जरूरत है, क्योंकि तभी उस ढाँचे को हिलाया जा सकता है जिसमें राजनीतिक विकृतियों को संस्कृति मानकर संरक्षण दिया जा रहा है।

देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में इधर यह भी देखने को मिल रहा है कि समाज में सकारात्मक मूल्यों को स्थापित करने की प्रक्रिया थम–सी गई है। राजनीतिक और नागरिक प्रशासन, दोनों दायित्वहीनता के शिकार हो गए हैं। समाज में पनपती कुप्रवृत्तियों को नियंत्रित करने का जो सामाजिक नेतृत्व था, वह पूरी तरह समाप्त होता दिखाई दे रहा है। इसे नष्ट करने में राजनीतिक नेतृत्व का सबसे बड़ा हाथ है, क्योंकि वह खुद इतना उच्छृंखल और दायित्वविहीन हो गया है कि समाज के अन्य स्तरों पर बड़े दायित्वबोध के साथ कोई सामाजिक नेतृत्व उभर ही नहीं सकता। देश तथा राज्यों के तेजी से बदलते राजनीतिक परिदृश्य में एक स्वस्थ एवं सकारात्मक सोच की जरूरत है। दरअसल, राजनीति की कुछ धाराएँ ऐसी हैं, जो विकल्प की ललक की बजाय राजनैतिक सत्ता और विभाजित समाज के समीकरणों से कहीं ज्यादा संचालित होती है। कई बार इसके बीच यह पता ही नहीं चलता कि आमजन कहाँ है, उसकी भूमिका क्या है, वह क्या कर रहा है और क्या करने में समर्थ है, वह कहाँ से शुरुआत कर सकता है और जमाना बदल सकता है। आज के युवा आंदोलन पर संसदीय राजनीति से ज्यादा विश्वसनीयता का घटाटोप छाया है। यौवन की प्रारंभिक अवस्था में पदार्पण करने वाले छात्र प्रायः शरारती होते हैं, क्योंकि ऊर्जा का जो ज्वार उनमें उमड़ रहा होता है, वह सकारात्मक अभिव्यक्ति चाहता है, गतिरोध की स्थिति बनाए रखना चाहता है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत के संसद में विपक्ष संसद की कार्यवाही ठप्पकर आखिर क्या संदेश देना चाहते हैं? संभवतः कार्यवाही रोकने को सरकार बदलने के तरीके के तौर पर उपयोग करना चाहता है। निःसंदेह लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा का जितना दायित्व, सत्ता पक्ष पर है उतना ही विपक्ष पर भी है। यदि श्रेष्ठ लोकतांत्रिक परंपराओं की रक्षा नहीं की जाएगी, तो देश के समक्ष जो समस्याएँ हैं वे और भी जटिल ही होंगी।

पिछले, दो दशक के इतिहास को देखने से तो ऐसा लगता है कि हमारे देश में जोड़–तोड़ की राजनीति द्वारा सत्तासीन होने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी हैं। सत्तापक्ष हो या प्रतिपक्ष सबका एक ही नारा है– सत्ता का सुख स्वयं भोगो, हमें भी भोगने दो। यही कारण है कि सत्ता के प्रति असंतोष काफी जोर–शोर से उपजा है तथा विकास का प्रवाह जहाँ–तहाँ थम सा गया है और आर्थिक विषमताएँ बढ़ी हैं। उसका संपूर्ण प्रतिरूप किसी तालाब के ठहरे हुए पानी–सा हो गया है जो जीवन का प्रतीक और समृद्धि का आधार होने के बावजूद सड़ांध पैदा कर रहा है। गरीबी, बेरोजगारी, असमानता और अशिक्षा आदि समस्याएँ ज्यों–कि–त्यों हमें घेरे हुए हैं। आज भले गरीब–मजदूर, किसान एक–एक रुपए का मोहताज हो, देश सब्सिडी के बोझ को उठा पाने में अक्षम हो, मगर अरबों रुपए के घोटालों की भार आम जनता सह रही है। राष्ट्र के कर्णधार–शासन व विपक्ष में बैठे नेता–चुनावों में घोषणा बेचकर सुनहरा सपना दिखाते हैं। उसके बाद भ्रष्टाचार में इतने लिप्त हो जाते हैं कि पैसों की खनक के सामने गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा की दर्द भरी चीख उन्हें सुनाई नहीं पड़ती यही विडंबना है लोकतंत्र की। ऐसा भी नहीं कि गणतंत्र के इन साठ सालों में कुछ नहीं बदला है। मुस्कुराते चेहरों की तादाद बढ़ी है। 15वीं लोकसभा के कुल 550 सदस्यों में से 300 से अधिक करोड़पति चुनकर आए हैं जबकि 14वीं लोकसभा में इनकी संख्या मात्र 154 थी। यदि देश की समूची आर्थिकता का इसे ही पैमाना माना जाए, तो कहा जा सकता है कि पिछले पाँच वर्षों में इस देश के आम आदमी की आर्थिक स्थिति दो गुना अच्छी हो गई है, किंतु वास्तविकता कुछ और बयाँ करती है। इसी प्रकार 15वीं लोकसभा में 150 सांसद आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं जबकि 14वीं लोकसभा में इनकी संख्या मात्र 128 थी। उपर्युक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान लोकसभा में अधिकांश सदस्य या तो करोड़पति हैं या आपराधिक पृष्ठभूमि वाले। इसका अर्थ यह है कि वर्तमान राजनीति में धन और अपराध की जुगलबंदी आजकल का यथार्थ बन गई है। मगर एक अरब से अधिक की आबादी वाले इस देश में आज भी लगभग 30 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। करोड़ों लोग झुग्गी–झोपड़ियों में रहने के लिए मजबूर हैं। आज दाल–रोटी जैसा आम भोजन भी आम आदमी की पहुँच से बाहर है। इससे सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि ऐसे निर्धन लोकतांत्रिक देश में सांसद और विधायक करोड़पति हैं, तो वे आम आदमी के दुख–दर्द के कितने सहभागी बन सकेंगे।

हम जानते हैं कि कृषि भारत का संबल और इस देश की अस्मिता, अस्तित्व और गौरव से जुड़ी है, लेकिन लगता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अब इस पर अपना हक जताकर इसे बर्बाद करने पर तुली हैं। अब वह दिन दूर नहीं जब किसानों को बीज के लिए अमेरिका पर निर्भर रहना पड़ेगा। अमेरिका और यूरोपीय समुदाय किसानों को अनुदान नहीं देने के लिए भारत के ऊपर दबाव डाल रहे हैं जबकि ये अपने किसानों को कृषि क्षेत्र में काफी अनुदान दे रहे हैं। कृषि प्रधान देश होने के

बावजूद भारत में कृषि आधारित उद्योगों की दुर्दशा बढ़ती जा रही है। भारत भी महाशक्ति तब बनेगा, जब कृषि आधारित उद्योगों का विकास होगा।

जे. पी. आंदोलन भ्रष्टाचार को लेकर शुरू हुआ, पर जे.पी. का संपूर्ण क्रांति का सपना अधूरा रह गया। इस समय तो देश के पूरे राजनीतिक परिदृश्य में भ्रष्टाचार हावी है और केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा आमजन की सुख–सुविधा के लिए बनाई गई समस्त परियोजनाओं को नव भ्रष्टाचार रूपी दानव निगलता जा रहा है, फिर भी विधायिका व कार्यपालिका मौन है। मौजूदा परिदृश्य में संसद की सार्थकता ही खतरे में पड़ती दिखाई दे रही है। उस संसद की मौजूदगी का मतलब क्या जिसके सामने छह दिसंबर जैसा कांड हो जाता हो और सरकार मूकदर्शक रह जाती है। मुझे ऐसा लगता है कि आज के युवा व छात्र अब तक राष्ट्रीय राजनीति का मोहरा भर रह गए हैं। जरूरत इस बात की है कि छात्र और युवा राजनीतिक भूमिका अदा करते वक्त हथियार बनने की बजाय हाथ बनें, केवल राजनीतिक गिरोहबंदी और विश्वविद्यालय राजनीति तक सिमटकर न रहें, बल्कि देश में राजनीतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक नवनिर्माण की नीति युवा तय करे और वही इसे क्रियान्वित भी करे।

भारतीय लोकतंत्र में एक चीज आज और देखने को मिल रही है कि अधिकतर प्रबुद्ध तथा सूझ–बूझ वाले लोग किनारे खड़े तमाशा देख रहे हैं। चुपचाप देखने वाले लोग भी दोषी हैं। यदि महात्मा गांधी की बात मानें, तो चुपचाप देखने वाला तो और भी बड़ा दोषी होता है, खासकर तब जब देखने वाला उस अन्याय को रोकने की क्षमता रखता है। सामाजिक प्रतिबद्धता की कमी ने जहाँ व्यक्ति को आत्मकेंद्रित और आलसी बनाया, वहीं समाज को निर्जीव और स्थिर बना दिया। कोई समाज नए प्रयोग, नए आविष्कार और नए सुधार तब करता है जब वहां के नागरिक समाज की हर अच्छाई–बुराई के लिए स्वयं को जिम्मेवार मानें और सुधार के लिए प्रयास करें। तो आइए, हम इस पलायनवादी, आत्म–केंद्रित और कछुआ प्रवृत्ति को त्यागकर सामाजिक प्रतिबद्धता का जीवन दर्शन अपनाएँ और मौजूदा लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक नए एवं स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण का प्रयास करें। कारण कि भ्रष्ट राजनीति एवं नौकरशाही, कमजोर तथा जातिवादी नेतृत्व तथा निहित स्वार्थों के बोझ तले कराहते हुए देश के आमजनों के आँसू पोंछने वाला आज कोई नजर नहीं आ रहा है। संक्रमण के दौर से गुजरते इस देश में असंतुलित विकास और निर्माण इतिहास के थपेड़ों को अब और बर्दाश्त नहीं कर सकता। हमें यह तय करना होगा कि गणतंत्र के साठ वर्षों में हमने वह मंजिल हासिल की या नहीं जिसे पाने का सपना आजादी के दीवानों ने देखा था। इस दृष्टिकोण से आज लड़ाई तलवार से नहीं, बल्कि विचारों और मूल्यों की लड़ाई लड़नी होगी, यानी वैचारिक क्रांति लानी होगी।

दरअसल, हमने आजादी के बाद जिन लोकतांत्रिक परंपराओं को अर्जित किया था, उसे किसी बाहरी शत्रु ने नहीं, अपनी ही चुनी हुई सरकारों ने छीन लिया। सोचने और समझने के यंत्र को झिंझोड़ दिया जा रहा है। संसदीय लोकतंत्र में संख्या बल की जो भूमिका है उसे आज नजरअंदाज किया जा रहा है। विपक्ष भी उसे नजरअंदाज कर न केवल अपनी, बल्कि लोकतंत्र की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचा रहा है। यदि विपक्षी दल संसदीय मर्यादाओं की अनदेखी और अनादर करेंगे, तो इससे लोकतंत्र को क्षति ही पहुँचेगी। संसद तथा विधानमंडलों को न चलने देना और अविश्वास प्रस्ताव संबंधी सत्तापक्ष की चुनौती को स्वीकार न करना यही बताता है कि विपक्ष जान–बूझकर गतिरोध पैदा करना चाहता है।

कुल मिलाकर देखा जाए, तो देश आज नेतृत्व के संकट से गुजर रहा है, क्योंकि अप्रासंगिक लोग यहाँ के नेता बन गए हैं। जिन्हें दो हाथ दूर की भी नहीं सूझती, उन्हें हमने भविष्यद्रष्टा और अपना तारणहार मान लिया है। चरित्रहीन, चिंतनहीन तथा चतुर लोग देश के भाग्यविधाता बन बैठे हैं। ऐसे लोग सिर्फ आत्मघाती ही नहीं, देशघाती भी हो रहे हैं। अप्रासंगिक और अविश्वसनीय होती जा रही संसदीय व्यवस्थाओं, संसद और नेताओं की वजह से देश अराजकता की ओर बढ़ता दिखाई दे रहा है। वस्तुतः यह समय राष्ट्रीय चेतना को उन्नत, प्रखर और तेजस्वी बनाने का है और यह कार्य तभी संभव है जब रूढ़िवादी, अंधविश्वास, जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद और मजहबी उन्माद जैसी लोकतंत्र की आंतरिक चुनौतियों का सामना कर उसे समाप्त किया जाए। मर्यादाहीन नेतृत्व, विलासी व सुविधा भोगी तथा भ्रष्टाचार एवं कदाचार में लिप्त लोगों से जितनी जल्द निपटा जाए उतना ही अच्छा। यह बात ठीक है कि देश की संसदीय व्यवस्था एक हल्के दौर से गुजर रही है, जिसका इसकी प्रगति पर विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। परंतु मेरा विश्वास है कि देश की जनता में इस सामाजिक समस्या से जूझने की आंतरिक ऊर्जा है और इस प्रजातांत्रिक प्रणाली में राजनीतिक प्रतियोगियों को जनता अपना वजूद दिखा देने में सक्षम भी है। यदि हमें उनकी उच्छृंखलता का मुकाबला करना है, तो हमें जागना होगा और आंतरिक चेतना लानी होगी। लोकतंत्र के हम सभी पहरेदारों के लिए यह जरूरी हो गया है कि लोकतंत्र को लेकर फैल रही निराशा से मुक्त हो अपनी जानकारियों और जन–सरोकारों को और मजबूत तथा व्यापक बनाएँ।

संपादक

संस्कृत, आयुर्वेदीय परंपरा और बिहार

❑ उपेन्द्र नाथ

प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाली तथा भारतवर्ष की कीर्ति को चिरस्थायी रखने वाली पुरातत्व भाषा केवल संस्कृत है – **'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'।** अचरज नहीं कि भारतवर्ष की इस आत्मस्वरूपा भाषा को श्रद्धावश देववाणी, गीर्वाणवाणी या सुरभारती कहा गया है। निर्विवाद रूप से संस्कृत भाषा ने भारत की आधुनिक भाषाओं को अनुप्राणित किया है। मानव मस्तिष्क के सभी क्षेत्रों – भाषा, धर्म, दैवत विज्ञान, दर्शन, विधि शास्त्र, प्राचीन कला या शिल्प और पुरातन विज्ञान आदि – में संस्कृत का विपुल वाङ्.मय उपलब्ध है। **पंडित जवाहरलाल नेहरू** ने **Discovery of India** में लिखा है, **"भारत के इतिहास में संस्कृत का जो हाथ रहा है, वह विश्व में किसी भी भाषा का किसी भी कौम के इतिहास में नहीं रहा। संस्कृत में न सिर्फ ऊँचे से ऊँचे विचार और सुंदर से सुंदर साहित्य रचा गया है बल्कि कई एक छोटे–छोटे राज्यों में बँटे हुए उस भारत को एकता की लड़ी में बांधे रखने के काम को भी संस्कृत ने ही किया है।"** उक्त उद्धरण संस्कृत और भारत के प्राचीन गौरव के अटूट संबंध को प्रकट करने के लिए शायद पर्याप्त है। अनेक विदेशी विद्वानों ने भी उपर्युक्त प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं। **मैकडानल** के अनुसार समग्र सभ्यता का मूल संस्कृत वाङ्.मय में ही निहित है। **प्रो. मैक्समूलर** ने कहा है – **"संपूर्ण विश्व में समस्त प्राकृतिक साधनों से संपन्न, सौंदर्य, शक्ति और संपत्ति से समलङ्.कृत देश मेरे विचार से भारतवर्ष ही है।"** उन्होंने अन्यत्र कहा है – **"संस्कृत एक ऐसा विषय है जिससे हमारे अवकाश के क्षण आनन्ददायक बन सकते हैं।" संस्कृतिः संस्कृताश्रिता, और 'संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं ज्ञानविज्ञानवारिधिः। वेदतत्वार्थसंजुष्टं लोकाऽऽलोककरं शिवम्'** – आदि से स्पष्ट है कि संस्कृति का आधार संस्कृत ही है। भारतीय परंपरा ने सदा संस्कृतिनिष्ठा के मंगलमय मार्ग को ही अपनाया है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास साक्षी है कि उसका विस्तार विभिन्न विधाओं में काल और स्थान की सीमाओं का मोहताज नहीं रहा है। इसी कारण संस्कृत साहित्य के इतिहास में केवल कालीदास और वाणभट्ट के समकालीनों का इतिवृत्त ही नहीं, केवल काशी और उज्जैनी के कवियों और पंडितों का लेखा–जोखा ही नहीं बल्कि उसमें समूचे आर्यावर्त की रचना एवं गवेषणात्मक प्रतिभाओं का अपेक्षित योगदान निर्विवाद है।

इतिहास से यह तथ्य सुप्रमाणित है कि भारतीय संस्कृत, सभ्यता और संस्कृत वाङ्.मय की श्रीवृद्धि में बिहार राज्य का योगदान–वैदिककाल से अध्यावधि–निरंतर अप्रतिम रहा है। आदि कवि वाल्मीकि, गौतम, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, राजर्षि जनक, जगज्जननी जानकी, कपिल, कणाद, पाणिनी, पतंजलि, चाणक्य, जीवक, मण्डन मिश्र, भारती, वाचस्पति, बुद्ध, महावीर, कुमारिल, विद्यापति, गोविंददास तथा देशरत्न डा. राजेंद्र प्रसाद, प्रभृति सहस्त्राधिक मनीषियों ने बिहार की परमपुनीत धरा पर विभिन्न कालों में अवतरित होकर अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं अनुपम अवदानों द्वारा भारतीय संस्कृत तथा संस्कृत वाङ्.मय की विविध शाखाओं – वैदिक साहित्य, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद और अर्थशास्त्र – आदि को समृद्ध एवं श्रीसंपन्न बनाकर समस्त विश्व में भारत एवं बिहार का गौरव बढ़ाया है। वस्तुतः संस्कृत वाङ्.मय से बिहार के इन मनीषियों की कृतियों को यदि अलग कर दें तो संस्कृत वाङ्.मय सर्वथा श्रीविहीन हो जाएगा।

ऐतिहासिक संदर्भों से यह तथ्य सर्वविदित है कि प्राचीन काल से ही भारत में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति अत्यंत विकसित थी, जिसके प्रवर्तक आत्रेय पुनर्वसु थे। इन्होंने अग्निवेश को चिकित्सा विधा तक्षशिला में सिखलाई थी। इनके शिष्य चरक राजा कनिष्क के राजवैद्य थे, जिन्होंने आठ खण्ड वाले **चरक संहिता** की रचना संस्कृत में की जिसमें शल्यचिकित्सा का समावेश नहीं है। परंतु इसकी बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें काष्ठौषधियों के विधान का प्राचुर्य है। इनके बाद सुश्रुत ने **'सुश्रुत संहिता'** में शल्य चिकित्सा का प्रतिपादन कर इसे पूरकता प्रदान की। इनके बाद वाग्भट्ट ने **'अष्टांग हृदय'** एवं नागार्जुन ने **'रसरत्नाकर'** तथा **'योगसार'** लिखा और **'योगशास्त्र'** का अनुपम प्रतिपादन किया। आठवीं शताब्दी में माधवकर ने **'रुग्विनिश्चय'** का एवं चक्रपाणिदत्त ने **'चिकित्सासार'** का का निरूपण किया। **'शार्गधर संहिता'** की रचना तेरहवीं सदी में हुई और 'भाव प्रकाश' की रचना भाव मिश्र ने सोलहवीं सदी में की। **'आयुर्वेद निघण्टु'** की रचना धन्वन्तरि ने की। दीर्घायु प्राप्ति हेतु रसायनतंत्र का भी प्रतिपादन किया गया।

ध्यातव्य है कि यह आयुर्वेद बिहार प्रांत में परंपरागत ढंग से पल्लवित–पुष्पित हुआ है। बीसवीं सदी में भी आयुर्वेद अपनी उपयोगिता एवं विकास अक्षुण्ण बनाए हुए है। आयुर्वेद परंपरा में बिहार के योगदान का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है : पंडित चंद्रशेखर धर मिश्र द्वारा खोजी गई उदुम्बासार नामक औषधि अनेक रोगों के लिए रामबाण सिद्ध हुई है जिसकी प्रेरणा इन्हें नरसिंह पुराण से मिली थी। पंडित रघुनाथ प्रसाद मिश्र ने **'वैद्यमंजरी'** नामक पुस्तक में आयुर्वेद विषय का सुंदर प्रतिपादन किया है। पंडित कमला प्रसाद मिश्र ने **'वैधक कोष'** नामक

आयुर्वेद शास्त्र के एक अनुपम कोषग्रंथ का प्रतिपादन किया। पंडित देवदत्त त्रिपाठी ने **'आयुर्वेदी चर्चा'** नामक ग्रंथ का प्रतिपादन किया है। पंडित धर्मनाथ मिश्र 'धर्म' ने हिंदी भाषा में **'आयुर्वेद संगीत'** एवं **'नपुंसक कल्पद्रुम'** नामक ग्रंथों का प्रतिपादन किया है। पंडित प्रियव्रत शर्मा ने कई प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों का विमर्शात्मक प्रतिपादन किया है। इनके मौलिक ग्रंथों में **द्रव्य गुण विभाग, अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, वाग्भट्ट विवेचन, चरक चिंतन, आयुर्वेद का इतिहास** आदि उल्लेखनीय हैं तो संपादित ग्रंथों में **वोपदेव का हृदयदीपक, वाहर का अष्टांगनिघण्टु, माधव का द्रव्यगुण कैयदेव निघण्टु** और **चरकसंहिता** का अंग्रेजी अनुवाद आदि समादरणीय हैं।

निष्कर्षतः यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत होगा कि आयुर्वेदीय परंपरा में बिहार के आयुर्वेदाचार्यों का योगदान अनुपम एवं अविस्मरणीय रहा है। संतोषजनक बात यह भी है कि यह परंपरा आज भी अक्षुण्ण एवं सतत् रूप से प्रवाहमान है।

संदर्भ :

● संस्कृत–संस्कृति–स्तवक – डॉ. मण्डन मिश्र, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1993

● संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. बहादुर चंद छाबड़ा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1985

● 20वीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य को बिहार का अवदान – डॉ. ब्रजमोहन तिवारी, आदित्य बुक सेंटर, दिल्ली–वाराणसी, 2001

◗ **नगर एवं ग्राम नियोजन संगठन**
ई –ब्लॉक, विकास भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली

पराग

❑ **श्रीमती सुशील जैन**

जीवन तो है नश्वरता लिए
पानी के बुलबुले की नाईं
इसमें सुख–दुख पाए मैंने,
ज्यों समुद्र में लहरें।
विषय–भोगों को भी भोगा,
जैसे शंख में सीपी।
मान–अपमान के प्याले पिए,
विष–अमृत जो था मंथन में।
सृष्टि के नियमों में बह चला,
इक निर्जीव पुतली बन मैं।
तू स्वयंभू, शाश्वत और संहारक
तुझ पर आश्रित जीवन के सत्य।
चाह यही अब तुझमें रमूँ मैं,
ज्यों पराग सुमन में।

◗ **संगीत नाटक अकादमी,**
रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली

भोजपुरी कविता

इयाद

❑ **मदन मोहन श्रीवास्तव**

(एक) लोर में ढ़रत / इयाद केऽ
हम बटोर / रहल बानी / झुरीदार / गाल
का / गड़हा में....।
(दो) इयाद के नदी / गहिर हऽ
कि आदमी के / पागलपन
एही से हम / पोखरा में / डुबे का भय से /
समुंदर के / अथाह जल में / तैर रहल बानी।
(तीन) ईयाद के नदी / गहीर हऽ, बहीर हऽ पागल,
मवाली हऽ / एही से हम / बचपन के सगरी बात
अतीत के झरोखा से / देख रहल बानी।
(चार) जब केहू केऽ / इयाद आवेला तऽ
आँसू के सागर / उमड़ आवेलाऽ
एही से हम / इयाद के गहना / गढ़ा रहल
बानी / झुरीदार गाल का / गड़हा में।

◗ **ओ–56 (विस्तार) वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली**

पारसमणि

❑ **देवेन्द्र कुमार मिश्र**

सिकुड़ी चमड़ी / पके बाल / धुंधलाई रोशनी
लाठी टेक चलते / इनके पास जीवन / के ज्ञान, अनुभव
का खजाना है।
ये पारसमणि है / फलदार, छायादार वृक्ष है।
इनसे सीखो / इनके पास होश है / कुछ नहीं तो इनसे
लो तुम / अपनी बेहोशी तो दूर कर ही सकते हो।

◗ **जैन हार्ट क्लीनिक के सामने, एस.ए.एफ. क्वार्टर्स, बाबू लाईन, परासिया रोड, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) 480001**

समझ के बदनसीबी

❑ **जयसिंह अलवरी**

जी रहे हैं किस हाल में देखलो एक नजर
रही है जिंदगी अपनी तो इसी हाल में उम्रभर।
दशहत की गिरफ्त में रहा है सांसों का साज।
फसाना दर्दे–हयात का बयाँ करते भी लगा है डर।
समझ के अपनी बदनसीबी सदा लिये है लब।
एक जमाने से ये जख्म किए हैं दिल में घर।
तुम मेरे तरानों को लाना लबों पर जरूर 'जय'।
लिखे हैं ये गीत मैंने मन भर उम्र भर।

◗ **संपादक– 'साहित्य सरोवर', दिल्ली स्वीट्, सिरुगप्पा–583121,जिला बेलारी (कर्नाटक)**

'तिरंगे का दर्द'

❑ जितेन्द्र धीर

अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति का हमारा सपना 15 अगस्त 1947 को पूरा हुआ। हमें आजाद हुए साठ साल से अधिक हो चुके हैं। राष्ट्रीय पर्व के रूप में प्रत्येक वर्ष इस दिवस को हम भव्य समारोह के साथ मनाते हैं। लेकिन जिस देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना के साथ इस देश के रणबाँकुरों ने आजादी की लड़ाई लड़ी, अपना सर्वस्व होम कर दिया, क्या राष्ट्रीयता की वह भावना आज हमारे अंदर है? शायद नहीं। आजादी की लड़ाई लड़ते हुए अपने बलिदान से पूर्व काकोरी के अमर शहीद अशफ़ाक उल्ला खाँ ने इस समूचे देश से एक प्रश्न किया था–

"मौत और जिन्दगी है दुनिया का इक तमाशा/फरमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रण में/जिसने हिला दिया था दुनिया को एक पल में/अफ़सोस क्यों नहीं है वह रूह अब वतन में।"

वह रूह, राष्ट्रीयता की वह भावना कहाँ खो गयी? अपने राष्ट्रीय प्रतीकों, शहीदों की यादगारों के प्रति हमारे मन में क्या कोई ममत्व या सम्मान की भावना अब भी बची रह गयी है? शहीदों के नाम का जिस तरह बेशर्म इस्तेमाल अपने निजी स्वार्थों के लिए कतिपय लोगों द्वारा किया जा रहा है उसे लक्ष्य कर ही कभी कवि 'दिनकर' ने बहुत ही दुखी मन से कहा था–

"तुमने दिया देश को जीवन/देश तुम्हें क्या देगा।/अपना खून गरम करने को/नाम तुम्हारा लेगा।"

क्या अपने राष्ट्र के प्रति हम सचेत हैं? यजुर्वेद का कथन है– 'वये राष्ट्रे जागृयाम्'। हम राष्ट्र के प्रति सचेत रहें। अपने इस देश, भारतवर्ष के प्रति हम किस हद तक जागरुक हैं, यह विचार का विषय है। क्या राष्ट्रीयता और राष्ट्र प्रेम का वह स्वरूप हमारे अंदर है जिसे निर्धारित करते हुए स्वामी रामतीर्थ ने कहा था– "मेरा शरीर भारतवर्ष है। हिमालय मेरा सिर है। दक्षिण का कन्याकुमारी मेरा पैर है, गंगा–जमुना–सिन्धु तथा अन्य नदियाँ मेरी चेतना व रक्तवाहिनी नालिकाएं हैं। सिंधु तथा आसाम मेरी बाहें हैं जिन्हें मैंने संसार को गले लगाने के लिए फैला रखा है। पश्चिमी घाट तथा पूर्वीय घाट के पहाड़ मेरी जांघें हैं। मैं संपूर्ण भारतवर्ष हूँ।"

यह कटु सत्य है कि, स्वाधीनता प्राप्ति के साथ–साथ इस देश में दो बातें एक साथ हुईं। अंग्रेजों का इस देश से जाना और इस देश के लोगों के मन से राष्ट्रीयता की भावना का लोप होना। धर्म, भाषा, जाति के नाम पर आज हमारे बीच फूट के बीज बोये जा रहे हैं। अलगाववादी ताकतें इस देश को खण्ड–खण्ड करने पर आमादा हैं। सीमा पार के शत्रु इस देश की शांति व एकता को भंग करने की अपनी घिनौनी साजिशों से हमारा अमन–चैन मिटा रहे हैं। भय, आतंक, हिंसा, अराजकता की विकराल लपटों में सारा देश धू–धू कर जल रहा है। भूख, अशिक्षा, निर्धनता की बेड़ियों में हमारा देश आज भी जकड़ा हुआ है। टुच्ची राजनीति, पतन, भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा यह देश– क्या यही है, शहीदों के खून का मोल? क्या यही है, पानी की तरह खून बहाकर हासिल की गयी आजादी की उपलब्धि? विडम्बना है, इस देश को इस बदतर हालत में पहुँचाने वाले और कोई नहीं, हमारे अपने ही लोग हैं।

"सुनायें गम की किसे कहानी, हमें तो अपने सता रहे हैं/हमेशा वो सुबहो–शाम दिल पर, सितम के खंजर चला रहे हैं/न कोई इंगलिश न कोई जर्मन, न कोई रशियन, न कोई टर्किश/मिटाने वाले हैं अपने हिंदी, जो आज हमको मिटा रहे हैं।"

गुलाम भारत में शहीद अशफ़ाकउल्ला खाँ हसरत 'वारसी' की कही गयी ये पंक्तियाँ आज भी अपनी जगह पूरी तरह सच हैं। गौरतलब है, इस देश में जब से राष्ट्रीय एकता की नारेबाजी शुरू हुई तब से लगातार हमारे बीच अलगाव की खाइयाँ और बढ़ती गयीं। इतिहास गवाह है, क्रांतिकारी आंदोलन के दिनों में आजादी की लड़ाई लड़ते हुए किसी भी संगठन ने न तो धर्मनिरपेक्षता की कसमें खाईं, न इस पर वक्तव्य दिये, लेकिन हर एक ने स्वयं को भारतीय समझते हुए स्वाधीनता के यज्ञ में अपनी आत्माहूति दी। त्याग, बलिदान और समर्पण की वह हमारी परम्परा कहाँ गयी? कहाँ गया हमारा वह स्वदेश? कहाँ गये हमारे वे देशवासी? कहाँ खो गयी एकता की हमारी वह भावना? तिरंगे झंडे के माध्यम से इस भावना को शब्द देते हुए, कवि प्रभात चन्द्र शर्मा ने बड़े ही मार्मिक ढंग से कहा है–

"इक दिन मिला तिरंगा झंडा कुछ दुखी और उदास,/मैंने पूछा– भाई आजकल क्यों खुलकर लहराते नहीं?/वो गुस्से से बोला क्या करूँ?/हरे रंग को मुल्ला– मौलवी खींच रहे हैं?/केसरिया रंग पंडे–पुजारी भींच रहे हैं।/कभी जंगे–आजादी को हर धर्मों ने मिलकर लड़ा था,/तब मुझे तिरंगा होने का मान बड़ा था।/आज सभी हर एक को काट रहे हैं,/कमबख्त मुझे ही बाँट रहे हैं।/हरा केसरिया हट जाने पर मुझमें जो रंग बचता है/उससे बनता कफन जो केवल शव पर सजता है।/कह देना भारत वालों को वो मुझे तिरंगा कहलाने दें,/मिलकर रहें और शांति से मुझे गगन में फहराने दें।"

इन पंक्तियों में हमारा राष्ट्रीय ध्वज चीख–चीख कर अपनी बात कर रहा है। क्या आपको यह ध्वनि सुनाई नहीं देती?

◗ संपादक–'शब्द–संस्कृति', क्यू. 283, मुदियाली रोड, गार्डेनरीच, कोलकाता– 700 024

राष्ट्रीय परिवेश एवं कौमी एकता

❑ श्याम सुन्दर गुप्ता

यह निर्विवाद सत्य है कि अंग्रेज चले गये और 15 अगस्त 1947 को हमें स्वतंत्रता मिली। परतंत्रता ने हमें दिग्भ्रमित एवं पंथहीन ही नहीं बनाया बल्कि हमें बिल्कुल खोखला बना दिया। हम सब कुछ खो चुके थे, हमें बीच बाजार में खड़ा करके लूट लिया गया था। हमारे पास न तो आर्थिक शक्ति थी और न नैतिक बल, न हमारे पास समुचित सैनिक शक्ति थी, न सामाजिक बल, न हमारे पास धार्मिक एकता थी, न ही भावात्मक एकता– फिर भी हमें प्रसन्नता थी अपनी स्वतंत्रता की। भारत माँ के बहते हुए आँसू रुके, मुखारविन्द पर पहली मुस्कराहट खिल उठी। पर राष्ट्र के सामने अनेक समस्याएँ मुँह बाये खड़ी थी। उनका समाधान करना बहुत कठिन था, पर सर्वप्रथम आंतरिक शक्ति परम आवश्यक थी। पर आजादी के बासठ वर्षों में हमने बहुत कुछ पाया है और बहुत कुछ खोया भी है। हमारे देश में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों ने इस देश के लिए महान स्वप्न देखे थे, उनका अनुमान था कि स्वाधीन होकर यह देश ''दिन दूना रात चौगुना'' विकास करेगा। पर वे स्वप्न सही नहीं निकले।

''हम हैं हिन्दी के पुजारी, तुम हो उर्दू के रकीब / बस इसी ज़िद में क़लमकारों का फ़न फलता रहा / हम कहीं हिन्दू, कहीं मुस्लिम बने बैठे रहे / धर्म की चौपाल पर सारा वतन जलता रहा।''

इसी क्रम में देश के युवा प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने 'इक्कीसवीं सदी में भारत' का नारा दिया था। यह नारा देते समय उन्होंने– इक्कीसवीं सदी में देश की स्थिति काफी उन्नत होगी– का स्वप्न देखा होगा। उनके इस नारे को देने के बाद क्या वाकई देश ने हर क्षेत्र में उन्नति की है, यह गौर करने लायक बात है। कुछ क्षेत्रों को छोड़ दें तो बाकी क्षेत्रों में देश की स्थिति आज भी वही है जो राजीव गांधी द्वारा दिए गये उक्त नारे के समय थी। गरीबी, भ्रष्टाचार, अपराध, आतंकवाद (राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय), साम्प्रदायिकता एवं द्रुत गति से बढ़ती आबादी आदि पर अंकुश लगाने के बजाय हम इन समस्याओं में ज्यादा उलझे हैं। अतः कौमी एकता का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि हम कहाँ तक इन विकराल समस्याओं पर काबू पा सके हैं।

आज विश्व की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। प्राकृतिक संसाधनों की दिन–ब–दिन कमी होती जा रही है। पर हमारे यहाँ आबादी इतनी बढ़ रही है कि जनसंख्या के हिसाब से हमारे देश का विश्व में दूसरा नम्बर है। अगर बढ़ोतरी की रफ्तार पर हम अंकुश नहीं लगा सके तो कुछ वर्षों बाद हमारा जनसंख्या के मामले में पहला नम्बर हो जायेगा। दुर्भाग्य से एक तो निर्धनता ही भारत का पीछा नहीं छोड़ रही है, दूसरे जनसंख्या इतनी तीव्रगति से बढ़ रही है जिसकी कोई कल्पना ही नहीं है। डॉ. चार्ल्स ने कहा है– ''स्पष्ट है कि एक हजार पौंड प्रति वर्ष आय करने वाले एक व्यक्ति का, जिसके चार बच्चे हों, का जीवन–स्तर एक समान आय वाले कुँवारे व्यक्ति के जीवन स्तर से लगभग पाँचवें भाग के बराबर होगा। इसीलिए जीवन को सुखी बनाने के लिए परिवार नियोजन परमावश्यक है। यह केवल एक परिवार की भलाई के लिए नहीं है बल्कि संपूर्ण देश की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए जरूरी है, क्योंकि किसी परिवार का संबंध समाज से होता है। समाज का संबंध राष्ट्र से होता है। इस प्रकार परिवार का दुख समाज का और समाज का दुख राष्ट्र का होता है। यह सभी जानते हैं कि जिस व्यक्ति के ऊपर जितना उत्तरदायित्व अधिक होगा वह उतना ही अधिक चिंतित होगा और उसकी मानसिक अवस्था उतनी ही अधिक क्षुब्ध होगी। इससे जनजीवन संघर्षमय एवं अशांत होगा एवं ऐसी समस्याओं को जन्म देगा जो देश के लिए घातक सिद्ध होगीं। ''विभुक्षुतो किं न करोति पापं'' यानी– भूखा कौन सा पाप नहीं करता। ऐसा नहीं कि हमारी सरकार यह नहीं समझती पर स्थिति अभी भी बेकाबू है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि भ्रष्टाचार कोई नयी घटना नहीं। किन्तु आज इसने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि प्रधानमंत्री राजीव गाँधी को यह कहना पड़ा था कि गरीबों के लिए आवंटित 100 रुपये में केवल 15 रुपये ही उनको मिल पाते हैं। भ्रष्टाचार के कई रूप हैं– सामाजिक, व्यवसायिक, शैक्षणिक, राजनीतिक एवं आर्थिक– पर उन सबों में आर्थिक भ्रष्टाचार ने आज आर्थिक आतंकवाद का रूप ले लिया है। आतंकवाद इसलिए कि जहाँ प्रति वर्ष सीमापार आतंकवाद से 10,000 लोग मरते होंगे, वहीं आर्थिक आतंकवाद से देश की बड़ी आबादी प्रभावित होती हैं भूख मिटती नहीं, विकास होता नहीं, स्वास्थ्य ठीक रहता नहीं, पौष्टिक आहार मिलता नहीं, जिससे आम आदमी में रोष बढ़ता जाता है। उन्हीं की भावना को शब्द देते हुए राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा था– ''भूख अगर बेताब हुई तो आज़ादी की ख़ैर नहीं''। हमारी सरकार ने अब जाकर बहुत ही कड़ा रुख अपनाया है, तभी 'सूचना का अधिकार' कानून को सन् 2005 में लागू किया गया, जिसके नतीजे अवश्य आशाप्रद हैं। क्योंकि अब सुप्रीम कोर्ट के जज भी इस बात को मानने के लिए बाध्य हो गये हैं कि उनको भी अपनी सम्पत्ति का ब्योरा जनता के सामने रखना चाहिए।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत कई मुद्दों का सामना कर चुका है और आज भी पड़ोसी देशों से खतरा मँडरा रहा है। हमारी वर्तमान सरकार ने रक्षा क्षेत्र में हुई पुरानी गलतियों को समझा है एवं सही रास्ता भी अख्तियार किया है। किन्तु सीमापार के आतंकवाद के साथ आंतरिक सुरक्षा के लिए भी नयी चुनौतियां उत्पन्न हो गई हैं। भारत पहले से अलगाववाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं से ग्रस्त है। कश्मीर तथा उत्तरपूर्व में आतंकवाद

से लड़ते हुए कई साल बीत चुके हैं लेकिन समस्या जटिल होती चली जा रही है। सरकार इन चुनौतियों का बहादुरी से सामना कर रही है और भारत की अखण्डता के लिए वह दृढ़प्रतिज्ञ है, चाहे कितना ही संघर्ष करना पड़े। भारत की जनता को प्रधानमंत्री ने कई बार दृढ़ शब्दों में आश्वासन दिया है कि भारत की अखण्डता पर किसी भी कीमत पर आँच आने नहीं दी जायेगी।

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में त्याग, तपस्या, दया, दान, संतोष और शांति का महत्वपूर्ण स्थान था। विदेशी संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में इन आधारभूत स्तम्भों का स्थान भोगवाद और भौतिकतावाद ने ले लिया। खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार अर्थात् जीवन के सभी क्षेत्रों में हमने विदेशियों को अपना आदर्श मानना आरम्भ कर दिया। नैतिक रूप से परतंत्र तो थे ही, सामाजिक परतंत्रता की बेड़ियों में भी स्वयं को जकड़ लिया। परिणाम यह हुआ कि भारतीयों पर अंग्रेजियत हावी हो गयी " English man made in India " अर्थात्– भारतीय, भारत में निर्मित अंग्रेज बन गये। जबकि प्रत्येक राष्ट्र का रहन–सहन उस राष्ट्र के प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल होता है। जब हम प्रकृति के अनुकूल रहते थे तब भारत को विश्वगुरु की उपाधि से सम्बोधित किया गया था।

अतः कौमी एकता में यह जरूरी है कि हम भारतवर्ष की प्राचीन गौरव–गरिमा को नष्ट नहीं होने दें एवं अपनी समन्वयात्मक संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में विकृति न आने दें, क्योंकि राष्ट्रीय जन–जीवन का सौन्दर्य, यश व भावात्मक एकता उसमें ही अन्तर्निहित होती है। अपने पिता को ही पिता कहें, दूसरे के पिता को नहीं। इसलिए गीता में कहा है– "स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः"।

एक शायर ने कहा है–

"अंदर से जख्म, जख्म है बाहर की चोट से/वो लोग जिसके जिस्म पर कोई निशां नहीं"।

आज की राजनीति भी कुछ इसी तरह आहत है। हमारे यहाँ प्रजातंत्र की शासन पद्धति अपनायी गई। मौलिक तकाजा है कि जनता शिक्षित, जागरुक तथा कर्तव्यपरायण हो और उनके चुने हुए प्रतिनिधि जनता की भलाई को ध्यान में रखते हुए शासन करें। इस शासन प्रणाली में अनेक लाभ हैं। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता छिपी है। उसके अपने विकास की पूरी स्वतंत्रता है, शासन उसका सहयोगी है। पर आजादी के पहले एवं बाद की राजनीति में बड़ा फ़र्क आ गया है। इसमें नीति, आदर्श की जगह सुविधावाद एवं व्यक्तिवाद प्रधान हो गया है।

अतः प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिए हमें हमेशा चौकन्ना रहना होगा, ताकि एक जनमुखी, पारदर्शी एवं जवाबदेह सरकार का गठन हो सके। हम यह न भूलें कि केवल अच्छी सरकार ही सुशासन दे सकती है, गैर जिम्मेदार सरकार के कारण आंतरिक सुरक्षा एवं देश की सुरक्षा दोनों ही खतरे में पड़ सकती है जो कौमी एकता के लिए अत्यंत घातक सिद्ध होगी।

आज विज्ञान और टेक्नालाजी के निरंतर विकास से मनुष्य की जीवन–पद्धति तेजी से बदल रही है। जीवन में परिवर्तन की यह गति इतनी तेजी से बढ़ रही है कि एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी आश्चर्यजनक ढंग से अजनबी लगने लगी है। दो पीढ़ियों के बीच का अंतर वस्तुतः मूल्यबोध का अंतर है और यह अंतर अनेक कारणों से इतना गहरा होता चला गया है कि एक पीढ़ी के जीवन–मूल्य दूसरी पीढ़ी के लिए अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं।

आज मनुष्य विकास का एक यंत्र मात्र होकर रह गया है। इसीलिए विकास में हमें वह भी मिल रहा है, जिसके क्षणमात्र प्रयोग से मानव जाति का ही अस्तित्व समाप्त हो सकता है। तात्पर्य यह है कि विकास की जिन ऊँचाइयों को मनुष्य छू रहा है उस अनुपात में उसकी चेतना का विकास नहीं हो पा रहा है। यह अंतर्द्वन्द्व का मूल कारण है, यही मूल्यबोध का मुख्य संकट है। मूल्यबोध के संकट और संक्रमण की चिंता का आधार केवल मनुष्य और उससे निर्मित समाज ही नहीं बल्कि उससे जुड़ा सारा परिवेश है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन में मूल्यबोध का संकट वस्तुतः हमारे जीवन की विसंगतियों से उपजा है। वह प्रशासन और व्यवस्था के अनेक विरोधाभासों से जन्मा है। राजनीति और धर्म की अनुत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका से यह संकट भविष्य में और गहरा होता जाएगा यह कहने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए।

यह तथ्य अकाट्य है कि हमारे देश की भूमि उपजाऊ है। यहाँ पर 75 प्रतिशत भारतीय कृषि से जीवनयापन करते हैं। यहाँ कुटीर उद्योग उन्नति पर है। औद्योगिक उत्पादन प्रगति पर है। इस समय यहाँ से कपास, सन, चावल, मसाले, तिलहन, चमड़ा, ऊन, सिलाई की मशीनें और साइकिलें, सूती कपड़ा, सोना, चांदी, तांबा, काँच की वस्तुएँ, रेशमी वस्त्र, दवाईयाँ और मशीनें निर्यात की जाती है। हमारे राष्ट्र ने विभिन्न क्षेत्रों– जैसे उद्योग, विज्ञान एवं परमाणु शक्ति आदि में आशातीत प्रगति की है। आज हमारे देश की गणना परमाणु–शक्ति–संपन्न राष्ट्रों में होती है। पर यह भी सत्य है कि गरीबी, महँगाई व पौष्टिक आहार, जन–स्वास्थ्य, शिक्षा, बेकारी, दूषण आदि समस्याओं का संपूर्ण निराकरण नहीं हो पाया है। जब तक इन सारी समस्याओं का निराकरण नहीं होगा तब तक न तो राष्ट्र की आशातीत प्रगति संभव है और न ही कौमी एकता को दृढ़ बनाया जा सकेगा। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयतावाद, आतंकवाद इन सभी की जड़ें इन समस्याओं से गहराई से जुड़ी हैं। इन्हें अनदेखा करते हुए कौमी एकता या राष्ट्रीय एकता का स्वप्न देखते रहना बेमानी है। भूख, अशिक्षा, निर्धनता के परिवेश में कौमी एकता का बने रहना संभव नहीं हो पाता है।

◗ पूर्व महापौर (कोलकाता) एवं पूर्व सांसद
पी–3, सी.आई.टी. रोड, मौलाली, कोलकाता 700 014
दूरभाष : (033) 2265–1104, मोबाइल : 9433306268

स्वस्थ समाज के निर्माण में महिलाओं की अपरिहार्य भूमिका

❑ डॉ. चन्द्रसिंह तोमर 'मयंक'

हमारे वेद–पुराणों के अनुसार आदर्श नारी को घर की शोभा और लक्ष्मी कहा गया है। जयशंकर प्रसाद ने नारी को श्रद्धा कहा है जबकि नेपालियन और हिटलर ने अपनी माँ को क्रमशः शिक्षक व प्रेरणा का नाम देते हुए कहा है कि आज हम जो कुछ भी है अपनी माँ की नेक सीख के ही कारण हैं। इसी प्रकार पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन एवं जॉन एफ. कैनेडी, सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो, सुकरात एवं सिकन्दर के गुरु, अरस्तु ने तथा भारतीय युग पुरुष वीर छत्रपति शिवाजी एवं स्वामी विवेकानंद ने भी अपनी योग्यता का श्रेय अपनी माँ को ही दिया है। इस प्रकार संतान को वीर एवं महान बनाने के कारखाने नहीं होते और न ही वे बरसात की तरह ऊपर से गिर पड़ते हैं। उनको योग्य बनाने का प्रमुख श्रेय तो माता–पिता, शिक्षक; आस–पड़ोस का वातावरण एवं बच्चे की संगत का ही होता है। संयम, लज्जा, विनय, क्षमा, उदार, सेवा–सुश्रूषा, मित–व्ययिता आदि गुण युक्त नारियाँ न केवल अपने घर को बल्कि राष्ट्र को भी स्वर्ग या उन्नतशील बना सकती हैं। इस प्रकार उपर्युक्त गुण नारी के भूषण कहलाते हैं, जबकि कुछेक नारियों में कलह, परनिन्दा, ईर्ष्या, विलासिता, दिखावा, फिजूलखर्ची, घमंड, मजाक, वाचालता, मोह, स्वास्थ्य की लापरवाही, कुसंग, आलस्य एवं व्यभिचार आदि करने की प्रवृति होती है जो कि नारी के अवगुण अर्थात् दूषण कहलाते हैं।

नारी ने हमारी वैदिक सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। नारी ही आदिम संस्कृति का उद्गम स्थल है और नारी ही सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और गार्हस्थ्य स्नेह–सुख की सरिता का स्त्रोत है। मानवजाति की सभ्यता एवं सामाजिक विकास का मूल स्त्रोत नारी है, उसी के कारण संसार की सबसे अद्भुत संस्था गृह का जन्म हुआ, परिवार बने और समाज विकास का क्रम चला। ''संसार–सागर–मंथन'' नामक ग्रंथ के अनुसार सृष्टिकर्ता ब्रह्म ने सर्वप्रथम अचेतन सृष्टि का निर्माण किया, फिर प्राणियों का और तदोपरान्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष का। अंत में उन्होंने चन्द्रमा की चन्द्रिका, लता की कोमलता, तिनके की कम्पन, पुरुष की सुकुमारिता, जल की तरलता, वायु की चंचलता, सूर्य–रश्मियों की स्विता, हरिण के कटाक्ष, हाथी की मन्दगति, कोयल की आवाज, बाघ की क्रूरता, बगुले का ढोंग और रत्न की कठोरता इन सब वस्तुओं का संग्रह करके नारी का निर्माण किया और उसे पुरुष को सौंप दिया। नारी में उपर्युक्त संपूर्ण गुण प्रतीक के रूप में विद्यमान हैं। इन्हीं भावनाओं में नारी की आकर्षण शक्ति निहित है। हिन्दी विश्वकोष में ''नारी'' शब्द के पर्याय योषित, स्त्री, अबला, योषा, सीमन्तिनी, वधु, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला, प्रिया, रामा, जनि, जनी, योषिता, जोषित, जोषा, धनिका, महेलिका, महेला, शर्परी, योषित, सिंदूर, तिलका आदि दिए गए हैं।

नारी में मातृत्व की प्रधानता रही है। पुराणों में अनेक स्थानों पर माता की महिमा का यशोगान किया गया है। ''माता न पूजिता येन, तत्यवेदा निरर्थकाः'' मातृभावना जैसे दैवीय गुणों के कारण माता का स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा माना गया है। ''जीवन के अरुणोदय में नारी ही जननी के रूप में सात्विक, राजसिक, और तामसिक संस्कारों का जो बीज बालक के जीवन क्षेत्र में वपन करती है वही बीज पुष्पित और पल्लवित होकर जगत–जीवन का कारण बनता है। नारी के समाज में माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, सखी, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि विभिन्न रूप ही धार्मिक दृष्टि से नारी श्रद्धा एवं पूज्य–भाव से युक्त हैं। रमा, जगदम्बा, लक्ष्मी, सरस्वती और श्री के रूप में उसकी पूजा होती है।

उपनिषद् युग की विदुषी नारियों में मैत्रेयी, गार्गी आदि का नाम समाज में आदर के साथ लिया जाता था। इस काल में नारियाँ उच्च शिक्षा से विभूषित थीं। गार्गी द्वारा जनक की एक सभा में विख्यात ऋषि याज्ञवलक्य को प्रश्नों के उत्तर देने की चुनौती देना उन्हें विदुषी सिद्ध करता है। जब शास्त्रकारों ने उन्हें शूद्र के समान वेदों का अनाधिकारी बताया तो स्त्रियों का वैदिक अध्ययन बंद हो गया और अध्ययन के अभाव में उनमें बाल–विवाह भी होने लगा। पुराण साहित्य में पति–परित्याग और पत्नी–परित्याग को भी निषेध किया गया है। नारी के लिए पति सेवा तथा उसे अपना गुरु मानकर उसकी आज्ञा अनुसार चलने की बात कही गई है। रामायण और महाभारत में नारी का विदुषी रूप कम और त्याग, तप, नम्रता, पति सेवा आदि गुणों से युक्त नारी का गृहस्वामिनी रूप अधिक मिलता है। रामायण में पारस्परिक अनुराग को ही महत्त्व दिया गया है। पति द्वारा पत्नी के प्रति अनेक प्रकार के उदात्त संबोधन– देवि, मनस्विन भद्रे, क्याणि, चारूस्मिते, विलासिनी, मदिरेपणे, ललने

आदि प्रयुक्त होते थे। महाकाव्यों में चित्रित नारियाँ–द्रौपदी, दमयन्ती, कुन्ती, सावित्री, सीता तथा केकैयी अपनी स्थिति और युग की नारी–भावना को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

जैन धर्म में नारी के मातृ रूप, पतिव्रत धर्म और सतीत्व धर्म पर अधिक बल दिया गया है। उस युग की नारी में कर्तव्य पालन और त्याग की भावना विद्यमान थी एवं स्त्रियाँ शासन संबंधी प्रबंध करने में भी कुशल थीं। चालुक्यवंशीय विजय भट्टारिका, लक्ष्मीदेवी, अन्मादेवी और मलवादेवी राज्य शासन और युद्ध कला में प्रवीण थीं। राजशेखर की पत्नी एक कवयित्री, आलोचिका और शील भट्टारिका थीं। मन्डनमिश्र की पत्नी उभयभारती को श्री शंकराचार्य और मंडनमिश्र के शास्त्रार्थ की मध्यस्था बनाया गया था। ईसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से ही नारी की मान–मर्यादा नष्ट होने लगी थी और सम्राटों तथा राजाओं के अंतःपुर में रूपवती कोमलांगी स्त्रियों की संख्या वृद्धि पर थी। मनुस्मृति द्वारा तत्कालीन नारी की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। मनुस्मृति के अनुसार इस काल में आठ प्रकार के वैवाहिक संबंध होते थे जिनमें से चार श्रेष्ठ और चार कुत्सित माने जाते थे। मनु ने नारी की सदैव रक्षा करते हुए उसे स्वतंत्रता न देने की बात कही है। नीति काव्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में नीतिपरक सूक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। महाराज भर्तृहरि ने अपने 'श्रृंगार शतकम्' में स्त्री को माया की डिबिया और जीवों को फँसाने का एक बंधन माना है।

संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधि–त्रय हैं। नारी गौरव की गाथा से गुंफित अपने कीर्ति–स्तंभ 'रघुवंश' में कालिदास ने भारतीय आदर्शमयी पत्नी और माता के रूप में नारी के मनोहारी चित्र अंकित किए हैं। सुदक्षिणा और महाराजा दिलीप में प्रेम की पूर्णता, मातृत्व और पितृत्व में पूर्णरूपेण उपलब्ध होती है क्योंकि जिस प्रकार शिव और उमा कुमार के जन्म से, इन्द्र और शचि जयन्त के जन्म से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार दिलीप और सुदक्षिणा भी प्रभु के जन्म से प्रसन्न हुए। कालिदास नारी सौंदर्य के प्रेमी और श्रृंगार आलम्ब विभाव के अंतर्गत नारी के सौंदर्य चित्रण में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने भिन्न–भिन्न स्वभाव वाले तेरह नारी पात्रों का चित्रण किया है। सीता, शकुन्तला, पार्वती, उर्वशी, इन्दुमति, इरावती, सुदक्षिणा, औशिनरी, धारिणी, मालविका, अनुसूया, प्रियवंदा तथा यक्ष पत्नी पार्वती (कुमारसम्भव), सीता, (रघुवंश), शकुन्तला, (अभिज्ञानशाकुन्तलम्), यक्ष प्रिया, (मेघदूत), उर्वशी, (विक्रमोर्वशीय) बिना किसी श्रृंगार के अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में हैं। उन्होंने नारी की महिमा को सदैव अक्षुण्ण बनाये रखा। उनकी नारी साध्वी, श्रद्धामयी तथा सत्क्रिया स्वरूपा है। "उत्तर–रामचरित" में भवभूति का कथन है कि नारी के बिना पुरुष का जीवन अधूरा है और पुरुष नारी के सहयोग के बिना पुरुषार्थ में कृत कार्य नहीं हो सकता। इस प्रकार भवभूति के "उत्तर–रामचरित" में सीता, नारी का एक नवीन आदर्श उपस्थित करती है।

जयदेव कवि ने अपने "प्रसन्न राघवम्" में भारतीय नारी के आदर्श के बड़े मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किए हैं। आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि ब्रह्म जी ने स्त्री के सिवाय कोई अन्य बहुमूल्य रत्न संसार में ऐसा निर्मित नहीं किया जो श्रुत, दृष्ट, स्पृष्ट और स्मृत होते ही आह्लाद उत्पन्न कर सके। स्त्री के कारण ही घर में अर्थ है, धर्म है और पुत्र सुख है। श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास आदि हिन्दू–शास्त्रों से लेकर वर्तमान समय तक के संत, महात्माओं की पावन मधुर वाणी में भी विविध सद्गुणों की मूर्ति ब्रह्मवादिनी, विदुषी, माता, पत्नी, सती और पतिव्रता आदि के रूप में नारी की अत्यधिक प्रशंसा पाई जाती है। जहाँ उसकी महिमा के अंकित गुण गाये गए हैं वहीं उन्हीं ग्रंथों में नारी की निन्दा भी की गई है और नारी से बचे रहने के लिए सावधान किया गया है।

संस्कृत साहित्य में नारी के कार्य–क्षेत्र को कई भागों में विभाजित किया गया है, तपोवन में रहने वाली कन्याएँ, नगरवासिनी कन्याएँ, अंतःपुर की वधुएँ, गृहिणी नारियाँ, परिचारिका तथा वारविलासिनी (गणिका) नारियाँ। उस समय के नारी सौंदर्य, नायिका–भेद, जल–विहार और षड्ऋतु वर्णन से ज्ञात होता है कि नारी सदा से मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों की प्रेरणा स्रोत रही हैं। संस्कृत कवियों में अश्वघोष से लेकर श्री हर्ष तथा जयदेव तक ने लगभग बारह सौ वर्षों तक अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से नारी सौन्दर्य का निरीक्षण कर अपनी रचनाओं में उसकी सफल अभिव्यंजना की। कहा जाता है कि नारी ब्रह्मा की श्रेष्ठतम कृति है। संस्कृत के एक वाक्य "एकोअहम् बहुस्यामः" के अनुसार एक बार ब्रह्म की इच्छा हुई कि एक से मैं अनेक हो जाऊँ। अतः उन्होंने अपने को दो रूपों में विभाजित कर वाम भाग से नारी और दक्षिण अंग से पुरुष की रचना की। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कुछ भारतीय दर्शन के जानकार शिवशक्ति में, ब्रह्म/सरस्वती में, विष्णु–लक्ष्मी में, राधा–कृष्ण में कोई अंतर नहीं मानते। इसी भाव–व्यंजना को भारतेन्दु ने भी वाणी दी–

"जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।/जो नारी सोई पुरुष, या न कुछ विभक्ति।।"

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के मुताबिक नारी आदिदेवी माँ पार्वती का रूप है। अतएव नर और नारी में नारी का ही स्थान श्रेष्ठ माना जाना चाहिए लेकिन नारी की यह महानता है कि वह पुरुष को ही अपने से श्रेष्ठ मानती है, उसे ही सब कुछ समझती है। यदि ऐसा गुण नारी में नहीं होता तो सीता भगवान राम के साथ किसी भी कीमत पर वन में नहीं जाती। जब भगवान श्रीराम वनवास के लिए चल पड़े थे तो सीता भी उनके साथ चल पड़ी थी और यों कहा थाः–

"जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी, तैसेइ– नाथ, पुरुष बिनु नारी।"

नारी रूप–चित्रण में कवि या कलाकार कहीं हिचकता हुआ दिखाई नहीं देता। अन्य रीतिकालीन कवियों में कवि सेनापति ने भी नारी सौंदर्य को अत्यधिक बखाना है। मैथिल कवि विद्यापति ने नारी के मांसल रूप का विश्लेषण कर अपने अद्भुत दृष्टिकोण का परिचय दिया। हिन्दी समीक्षकों का कहना है कि विश्व की समस्त श्रेष्ठ एवं सुंदर चीजों को एकत्र कर स्वयं ब्रह्मा ने नारी की सृष्टि की और यही कारण है कि वह अत्यधिक मादक तथा मोहक बनी। कविवर मतिराम भी इसे स्वीकारते हैं :

''संचि विरंचि निकाई मनोहर, लाजति मूरतिवन्त–बनाई।''

नारी एवं उसके प्रति भला हम मुँह कैसे मोड़ सकते है? सूर ने वात्सल्य रस के द्वारा रतिभूमि को अदभुत एवं अनोखा रंग प्रदान किया। कबीर ने नारी को माया, मोहनी, ठगनी के रूप में देखा :– ''कबीर माया मोहनी जैसी मीठी खांड।'' दुल्ह सुकवि के अनुसार– ''भारतीय नारियाँ प्रायः पति की आज्ञा पालन करने में हिचकती नहीं, भले ही उनकी इस ओर रुचि हो या नहीं। अतः ''हाँ'' कहना उनका स्वभाव बनता है किन्तु प्रणय–बेला में वे प्रायः ''ना'' का प्रयोग बड़ी उत्सुकता से करती हैं। वे कार्य वहीं करती हैं जो प्रेमी चाहता है किन्तु ''नाहीं'' या ''ना'' भी कहती जाती हैं।'' रीतिकालीन काव्य में तो नारी–सौन्दर्य विश्लेषण में उनका निरीक्षण एवं परीक्षण अनूठा एवं अपूर्व सिद्ध हुआ। नायिका के रूप में जब उमंग जागती है तो उस वक्त ऐसा लगता है, मानो उसकी तरुणाई का नवीन प्रष्फुटन हुआ हो। नारी एवं रीतिकालीन काव्य परम्परा में नारी–सौंदर्य चित्रण पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान सोमदत्त मालवीय का मानना है कि ''इस जगत का सार ही नारी है क्योंकि वह श्रृंगार की श्रेष्ठ परिणति है, सम्मोहिनी विद्या है, सौंदर्य रूप श्रेष्ठ लक्ष्मी की उत्कृष्ट पद्वी है, काम के यौवन का भारी मद है, रति प्रवाहों की सरिता है, हाव–भाव रूपी संपदाओं की क्रीड़ा है और सौंदर्य का अखण्ड और पवित्र पण है। इस काल में मांसल, बाहय और हृदय आवर्जक चित्र प्रायः प्राप्त होते हैं। नवल अंगनाओं की छवि, वयसन्धि और मुगधातत्व के वर्णन के प्रति सचेष्टता और वीर्य–विक्षोभक अंगों का मांसल सौंदर्य इस युग की विशेषता है। इस काल के कवियों ने नारी के दैहिक रूप की सज्जा, कामोज्जित अंगों का आकर्षण तथा किशोर–किशारी अवस्था के रूप में चित्र प्रस्तुत किए हैं क्योंकि श्रृंगार का सार इस अवस्था में प्रकट होता है।''

प्रसिद्ध साहित्यकार भोजदेव ने अपने ''श्रृंगार–प्रकाश'' ग्रंथ में इसकी पुष्टि की है। वास्तव में जगत में जो जैसा है, उसका वर्णन भी वैसा ही करने के लिए साहित्यकार बाध्य होता है अन्यथा उसके साहित्य की मर्यादा नहीं रह जाती। ऐसी दशा में नारी रूप को रीतिकालीन कवियों ने जहाँ जैसा देखा–समझा वैसा ही अगर अपने काव्य में पिरोकर मानव–समाज को लौटाया तो इसमें उनका क्या गुनाह? कहा जाता है कि जब विरहिणी नायिका विरह–वियोग में अत्यधिक तप्त हो जाती है तो वैसी अवस्था में वास्तव में संयोग के क्षणों में जो चीजें सुखदायिनी जान पड़ती हैं, वही वियोग के क्षणों में कष्ट कारक बन जाती हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज के कुंज भी गोपियों के लिए शत्रु समान हो गए थे। कृष्ण–भक्त नहीं जानता? नारी जीवन विप–बेली पर कुसुमित होते हुए किसलय की भाँति है। मैथिलीशरण गुप्त का ध्यान इस ओर गया था, तभी तो उन्होंने कहा–

''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी? /आंचल में है–दूध और आंखों में पानी।''

वे कहते हैं कि पाठकों के हृदय पर कविता की छाप छोड़ना, विशेषकर, श्रृंगार रस की, पत्थर में छेद करने के समान है। दुनिया की सभी भाषाओं का साहित्य नारी रूप, नारी चेष्टा और नारी भाव से ओत–प्रोत है। उसके सौंदर्य की सुंदर अभिव्यक्ति शत–प्रतिशत हो रही है तथा आगे भी होती रहेगी।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते– तत्र देवताः।''

छायावादी काव्य के प्रथम प्रर्वतक महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत कर नारी संसार को धन्य–धन्य किया। उन्होंने कहा कि–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास, रजत, नग–पगतल में।

पीयूष–श्रोत–सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।''

यद्यपि पुरुष और नारी समाज के निर्माण में बराबर भूमिका निभाते हैं फिर भी पुरुष की महत्ता नारी से अधिक है। नारी को समाज में वह स्थान आज भी नहीं मिला जिसकी वह हकदार है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग साठ वर्ष बाद भी नारी की स्थिति में वांछित सुधार नहीं हुआ है यद्यपि उसे त्याग और ममता की प्रतिमा जैसे शब्दों से सुशोभित किया जाता रहा है। मुगलकाल के कुछ शासकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने का भरपूर प्रयास किया। नूरजहाँ की जहाँगीर की सत्ता में भागीदारी, इस बात की पुष्टि करती है। फिर भी उस काल में प्रचलित कुछ कुप्रथाएँ महिलाओं को हारी हुई और दूसरों की मोहताज भी साबित करती हैं। एक शासक द्वारा एक से अधिक बीबियाँ रखना, नृत्यांगनाओं को वेश्या बनने पर मजबूर करना आदि इसके उदाहरण हैं।

नारियों के विकास का काल आधुनिक काल माना जा सकता है। इस काल में नारियों ने स्वतंत्रता–संग्राम में

बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। झाँसी की रानी, अहिल्याबाई होलकर व चाँद बीबी इसके चन्द उदाहरण हैं। संविधान में नारियों के हितों की रक्षा के लिए कानून बनाये गये। संविधान के नीति–निर्देशक तत्व में इस बात पर जोर दिया गया कि सभी निकायों में नारियों की भागीदारी सुनिश्चित की जाये। बाल–विवाह, सती–प्रथा जैसी कुरीतियों का अंत हुआ। सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई योजनाओं ने भी नारी के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप नारी ने देश के प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री जैसे प्रतिष्ठित पदों को सुशोभित किया। इनमें स्व. इंदिरा गांधी का नाम अग्रगण्य है जिनकी गिनती भारत में ही नहीं विश्व के श्रेष्ठ नेताओं में की जाती है। इसके साथ कल्पना चावला और अरूंधति राय आदि के कार्यों को भी नहीं भुलाया जा सकता। सभी जानते हैं कि आज नारी ने अपनी योग्यता से सभी विधाओं/क्षेत्रों में अपना दबदबा बना रखा है। अपने सुकार्यों की लोकप्रियता के कारण अनेक भारतीय नारियों का नाम विश्व के बच्चे–बच्चे की जुबाँ पर है जैसे स्वर्गीय इंदिरा गांधी, स्वर्गीय कल्पना चावला, एशियाई स्वर्ण पदक विजेता कंवलजीत कौर सन्धु, पी. टी. ऊषा, विजय लक्ष्मी पंडित और प्रथम विश्व सुन्दरी रीता फाड़िया आदि। वे पुरुषों से आगे नहीं हैं तो पीछे भी नहीं हैं।

नारी और पुरुष जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये माने गये हैं। किसी एक पहिये के बिना गाड़ी नहीं चल सकती तो नर की तुलना में क्यों नारी का दर्जा निचला मानकर (समान अधिकार होते हुए भी) उसे सर्वहारी माना जा रहा है। कैसी प्रवंचना है यह? भारतीय नारी वर्ग में प्रथम अर्थात् अग्रणी रहने वाली कुछ नारियों एवं युवतियों की सूची निम्नानुसार है:–

किरण बेदी (प्रथम आई. पी. एस.), अन्ना राजम जार्ज (प्रथम आई. ए. एस.), श्रीमती इंदिरा गांधी (प्रथम प्रधानमंत्री) श्रीमती कोकिला अय्यर (प्रथम विदेश सचिव), हंसा मेहता (प्रथम उप कुलपति), श्रीमती सुचेता कृपलानी (प्रथम मुख्यमंत्री), श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित (प्रथम राजदूत), लीला सेठ (प्रथम मुख्य न्यायधीश), फातिमा बीबी (सुप्रीम कोर्ट की प्रथम जज), वायलेट अल्वा (राज्यसभा की प्रथम सभापति), कौशल्या नारायणन (कस्टम एंड एक्साइज आयुक्त), मेजर जनरल जी. ए. राम (प्रथम महिला जनरल), पी. के. टी नागुंली (प्रथम चीफ इंजीनियर), शांता कुमारी (सिंडीकैट बैंक मैनेजर), रोज मिलियन मैत्थयूज (संघ लोक सेवा आयोग की प्रथम अध्यक्ष), उज्जवला राय (समुद्री यात्रा द्वारा विश्व का चक्कर लगाने वाली प्रथम महिला)। नारी इतनी उपलब्धियाँ हासिल करने के बाद भी सब कुछ हारी हुई (सर्वहारी) दिखाई पड़ती हैं। आज भी उनकी आधी से ज्यादा संख्या निरक्षर है। राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत सबसे कम है। कई राज्यों में तो बलात्कार व स्त्रियों को नंगे घुमाने की घटनाएँ आम बात हो गई हैं। कई स्थानों पर महिलाओं पर होने वाले जुल्म ने तो हद की सीमा भी पार कर दी है। क्या यह नारी की हार नहीं है?

आज सभी कार्यालयों/संस्थानों में महिलाओं का प्रतिशत बहुत ही अच्छा है, लेकिन उन पर होने वाले यौन–शोषण एवं अत्याचार में कमी नहीं आयी है। वर्ष 1996 में पंजाब पुलिस के प्रमुख गिल और रूपल देओल बजाज के प्रकरण में न्यायालय द्वारा गिल को दी गई सजा, नारी सुधार की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है, लेकिन न्यायालय द्वारा उठाया गया कदम ही काफी नहीं है, समाज को भी इसके लिए आगे आना होगा। नारी को परिवार में भी उचित दर्जा व स्थान प्राप्त नहीं है। कुछ परिवारों में उन्हें शिक्षा और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता भी नहीं दी जाती है। पढ़ी–लिखी होने के बावजूद भी अपने भविष्य के निर्णय के लिए परिवार के पुरुष सदस्यों पर ही आश्रित हैं। आज भी नाम के साथ पिता का नाम जोड़ने का प्रावधान है, माता के नाम से वंश को नहीं जाना जाता है। ये बातें यह साबित करती हैं कि समाज में पुरुष की ही प्रधानता एवं वर्चस्व है। नारी समाज की आत्मा और दया की प्रतिमा होने के बाद भी वह अबला के रूप में जानी जाती है। उनके विकास के लिए समाज में उन्हें बराबर का दर्जा देना होगा– नहीं तो आने वाला इतिहास हमें कभी माफ नहीं करेगा और नारी के दर्द के आँसू की कीमत मानव जाति के विनाश से चुकानी पड़ेगी।

सरकार द्वारा महिला आयोग का गठन व संसद में उनके लिए आरक्षण के प्रावधान करने की कोशिश इस दिशा में उठाया गया एक सार्थक कदम है। लेकिन उनके विकास हेतु अभी और योजनाओं को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। इतना ही प्रयास सिर्फ काफी नहीं है। नारियों को भी इसके लिए आगे आना होगा। पुरुषों को भी चाहिए कि वे अपना नैतिक समर्थन दें। तमाम उपलब्धियाँ हासिल करने के बाद नारियों की स्थिति में सुधार करना हम सबका नैतिक कर्तव्य है ताकि वे आगे भी सर्वशक्तिसम्पन्ना बनकर विश्व–निर्माण में अहम भूमिका निभाती रहें।

सम्पादक– 'साहित्य प्रभा', तपोवन नालापानी, देहरादून, दूरभाष :09411575129

आत्मबोध

❑ दीनानाथ साहनी

गाँव के एक किनारे पर मेरा घर था। घर के ऐन सामने गंदा नाला बहता था और नाले के उस पार बहुत ही सँकरी–सी सड़क थी। बच्चे सड़क पर ही खेला करते थे। गांव में हर समुदाय के लोग रहते थे। एक मोहल्ला मुसलमानों का भी था, जहाँ ज्यादातर गरीब मुसलमान रहते थे। उनकी आजीविका बटाईदारी पर निर्भर थी। मोहल्ले के बीच में एक मदरसा था, जहां मौलवी साहब बच्चों को तालीम देते थे। बच्चों को उर्दू, अरबी और फारसी की शिक्षा दी जाती थी। वैसे मदरसे से सटे नाले के पार पाठशाला में हिन्दुओं के बच्चे पढ़ने जाते थे।

बचपन में माँ समझाती थी–''उस पार के लोग के बच्चों के संग नहीं खेलना, उनके घरों में जाने और खाने–पीने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है।'' माँ को चिढ़ाने के लिए 'उस पार के लोग' का मतलब जानने की खूब जिद करता था, तब दीदी बोल पड़ती थी, नहीं समझा बुद्धू, उस पार के लोग का मतलब–मुसलमानों का मोहल्ला। हालाँकि, उस मोहल्ले में मैं अक्सर जाया करता था–रजनी, पप्पू, मुख्तार, मुश्ताक के साथ खेलकर घर लौटता तो माँ से झूठ बोलता कि मैं अपने पड़ोस में ही खेल रहा था। कभी–कभी मेरा झूठ पकड़ा भी जाता, तब मां से मुझे खूब डाँट पड़ती। माँ के गुस्से में भी वात्सल्य प्रेम रहता था। माँ के अक्स को देखकर ही मैं बड़ा हुआ–माँ तो इस संसार की वो कृति हैं, जिनमें सारा ब्रह्माण्ड झलकता है।

घर में माँ कभी–कभी बिल्कुल चुप हो जाया करती थी। यह चुप्पी कई दिन चला करती थी, तब मैं परेशान हो उठता था। जनवरी के पानी बरसाते, हड्डियों में ठिठुरन भरते बर्फीले ठंडक भरे दिन, जून की झुलसाती गर्मी के दिन और गर्म हवा.. जब वह इस प्रकार चुप हो जाती थी तो मेरे दिन और शाम बेचैनी में बीतते थे। तब वह घर का काम केवल रोबोट की भांति किया करती थी। हालात ऐसे होते कि उस तक पहुँचना अत्यंत मुश्किल हो जाता था। कभी–कभी तो माँ की खामोशी से घर में संवादहीनता बढ़ जाती थी। चारों तरफ तनाव और संवादहीनता का आलम होता था। यह स्थिति माँ की तब होती थी, जब उसकी चिंता बढ़ जाती थी–दीदी के लिए अच्छे वर की तलाश. । या फिर जब बाबूजी 'हौदिया' में पशुओं को चारा डालकर दलान में बैठ जाते और अपनी चिंताओं में घिरे अकेले ही सोचते रहते थे। या जब बड़े भैया द्वारा नौकरी पाने का प्रयास विफल हो जाता या फिर दीदी के लिए फिर से एक योग्य वर दहेज की खातिर हाथ से निकल जाता था..। राम जाने, कितने–कितने कारण थे माँ के चुप हो जाने के। जब भी उसकी चुप्पी टूटती तो वह मेरी ओर देखती हुई कहती, सूखे ने कहीं का नहीं रखा। नहीं तो, दीदी की शादी अमुक व्यक्ति से हो जाती, बड़ा घर था.. फिर वह नीले आकाश की तरफ ताकने लगती।

माँ को यह बिल्कुल पसंद नहीं था कि हम मुसलमानों के मोहल्ले में जाएँ। बीच में मस्जिद पड़ती, जहाँ नमाज अता होती थी, उस वक्त मुसलमानों की काफी भीड़ रहती थी। मस्जिद के अंदर मुल्ला जब पश्चिम दिशा में खड़ा होकर जोर से 'अल्लाह हो अकबर...' की आवाज लगाता, तो उसे सुनकर मुझे बहुत आनंद मिलता था। मस्जिद के आसपास कुछ दुकानें भी थीं। सड़क के इस पार नाले किनारे मछली बाजार लगता था, जहाँ लोहे के तसलों, परातों और गोलचों में मछलियाँ धरी रहतीं, जिनके ऊपर मक्खियाँ भिनकतीं। हिंदू हो या मुसलमान, सब मछलियाँ खरीदने आते थे। कभी–कभी मछलियों की गंध कस्बे के मुसलमानों के खिलाफ नफरत भर देती और लगता कि मां घर पर किसी मुसलमान को पिलाई चाय का प्याला घर के प्यालों से ठीक–ही अलग रखती है या उन बर्तनों को मिट्टी और राख से ठीक ही माँजती है, जिनमें बाबूजी ने किसी मुसलमान को जलपान कराया था।

यह 1977 के आसपास की बात है। देश का विभाजन हुए 30 वर्ष हो चुके थे और विभाजन में उजड़े परिवारों की दूसरी पीढ़ी बड़ी हो चुकी थी। लेकिन उन परिवारों ने विभाजन का दंश अब तक भूला नहीं था। आज यह सब याद आता है, तो लगता है कि जैसे पिछले जन्म की बातें हैं।

यह कितना अजीब है! एक गांव में रहते हैं हम। फिर भी हिंदू और मुसलमान के बीच विभाजन ने जो दरार पैदा की थी, वह भरी नहीं है बल्कि दोनों के रिश्ते के बीच दरारें और गहरी हुई हैं। हमने मुसलमानों को अपने से ठीक उलट मान लिया है। मसलन कि हम बाएँ से लिखते हैं, तो वे दाएँ से; हम हिन्दी लिखते–पढ़ते हैं, तो वे उर्दू पढ़ने–सीखने में रुचि लेते हैं; हम तोता पालते हैं, तो वे कबूतर। हम मुसलमानों को दुश्मन समझते हैं और वो हमें। यही सीख हम बच्चों को देते आ रहे हैं। आखिर, यह कब जानेंगे कि एक ही मां की दो संतानें हैं हम, जिन्हें यहीं रहना है, इसी जमीं पर जीना है और मरना भी। फिर एकता के सूत्र में अमन–चौन से रहने की बात क्यों नहीं सोचते और यही सीख अपने बच्चों को क्यों नहीं देते। बचपन से ही नई नस्लों में हिन्दू और मुसलमान होने का अहसास क्यों भरते हैं?

मछली बाजार के नीचे गंदा नाला बहता था। रिक्शे से जब हम माँ के साथ स्टेशन जाते तो मछली बाजार आने पर आँखों में उत्सुकता होती थी, जबकि माँ द्वारा दिए गए संस्कार के कारण नाक पर कपड़ा रखना पड़ता। कुछ छोटे–छोटे बच्चे

लोहे की बाल्टियों में नन्हीं–नन्हीं मछलियाँ लिये बैठे रहते, जो मरी हुई होतीं। कोई एकाध मछली कभी जब उछलती तो छोटे बच्चे उस बाल्टी में पानी डाल देते। ग्राहक आधे दाम पर मछली कटवा ले जाते। नाक पर कपड़ा रखे मैं उन कटी हुई मछलियों की आंखें देखता। मुझे आश्चर्य होता कि ये मछलियां रोती क्यों नहीं, हालांकि बकरी और गाय तो रोती हैं। सच कहूं तो बचपन में मुझे मछलियों को देखकर एक अजीब दर्द महसूस होता था।

कुछ बरस बाद जब मैं नौवीं जमात में आया और गर्मियों की छुट्टियों में माँ के साथ नानाजी के घर गया, तब मेरी आंखें खुलीं। नानाजी ने आम के एक बगीचे का ठेका ले रखा था। बगीचे की रखवाली एक आदमी करता था। उस आदमी का नाम करीम खान था। उन्होंने पेड़ से तोड़कर मुझे कई आम दिए। पहले दिन ही मेरी उससे दोस्ती हो गई। प्यार से मैं उन्हें करीम चाचा कहने लगा। करीम चाचा बगीचे में ही अपना भोजन बनाता था। वह दरांती से इस तरह मछलियों के छोटे–छोटे टुकड़े करता था, जैसे माँ दरांती से साग काटती थी। मैं कौतूहल से करीम चाचा को मछलियाँ काटते देख रहा था और जब करीम चाचा मछली की आंख को भी काटता चला गया तो पहली बार मेरी आंखें खुलीं। बाद में मैंने देखा कि नानाजी भी करीम चाचा के साथ मछली खा रहे हैं। घर लौटकर मैंने नानी–मां को नाना की करतूत बताई। मेरी बात पर सब हंसने लगे। नानी बोली–'जीव जीवस्य भोजनम्।' मछली नाना प्रिय भोजन फिर उन्होंने बताया–''मैं अपने घर में कोई मांस–मछली, अंडा–आमलेट बनने नहीं देती। बाहर ये गंद खाएं तो मैं क्या करूँ।''

मछली बाजार से मुझे घर मुड़ना होता था। नाले के दोनों ओर संकरी सड़कें थीं। एक सड़क से लगे मुसलमानों के घर थे, तो दूसरी सड़क के किनारे–किनारे लाइन से मेहतरों के घर। मुसलमानों ने म्युनिसपैलिटी की मदद से अपनी तरफ के नाले की दीवार ऊंची उठा ली थी जिससे सूअर इस तरफ नहीं आ पाते थे। उधर, मेहतर इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि सूअर किसी भी सूरत में उधर न चले जाएँ। ये ही मेहतर मुसलमानों के घरों में भी कमाने जाते थे और दबकर रहते थे। उनके घर जाते हुए मैं मुसलमानों के घर बड़े ध्यान से देखा करता था। घरों के दरवाजे खुले रहते और अपनी–अपनी हैसियत के अनुसार, उन पर चिकें, परदे और टाट टँगे रखते। ज्यादातर घरों में प्रायः पुराने टाट ही टँगे मिलते। अलबता, जिन घरों में बैठकें या चबूतरे थे, वहां चार–पांच लोग बैठे होते और बतियाते। पास में ही छोटे–छोटे बच्चे खेल रहे होते। मुर्गे–मुर्गियों के झुंड, उन बच्चों के आसपास होते। कुछ घरों के बाहर चौखट से बकरियां बंधी रहतीं। चौखट पर हरी–हरी पत्तियाँ इस तरह लटका दी जातीं कि बकरियां उन्हें आसानी से गरदन उठाकर खा सकें। सभी घर प्रायः गरीब लोगों के थे। उनमें से कुछ नाई, कुछ दर्जी, कुछ लोहार, कुछ राजमिस्तरी, कुछ बढ़ई और इसी तरह के काम–धंधे वाले लोग रहते थे। मैं इन घरों के अंदर का दृश्य देखना चाहता था क्योंकि मेरे लिए मुसलमान तब कुछ अलग–से जीव थे। मैं समझना चाहता था कि ये मुसलमान किस तरह रहते हैं? मुसलमान औरतें प्रायः घर में रहती थीं और जब बाहर निकलती थीं तो बुर्का ओढ़े रहती थीं। अलबता जुलाहा औरतों को मैंने कभी बुर्का ओढ़े नहीं देखा। वे चूड़ीदार पाजामा, कमीज और सफेद चद्दर या चुन्नी ओढ़े रहतीं। ये सभी पान खाती थीं, जिसके कारण मैंने अनुमान लगा रखा था कि सभी मुसलमान स्त्रियां पान खाती होंगी।

उन दिनों मैं 12वीं की पढ़ाई कर रहा था। एक दिन गाँव की सड़क से भारी जुलूस निकला। हाथों में लाल झंडे लिये लगभग दो–ढाई सौ छात्र–छात्राओं का यह नारा–'पूंजीवाद मुर्दाबाद, पूँजीवादी नीतियाँ खत्म करो।' जुलूस का नेतृत्व खद्दरधारी कई छात्र नेता कर रहे थे।

यह वह समय था, जब शीतयुद्ध आखिरी सांसें गिन रहा था। दुनिया दो ध्रुवों में बँटी थीं। एक पक्ष अमेरिका के साथ था, तो दूसरा सोवियत संघ के पक्ष में। मार्क्सवाद और साम्यवाद की विचारधारा, बुद्धिजीवियों में एक फैशन की तरह प्रचलित थी। जुलूस जिला स्कूल तक पहुंचा ही था कि पुलिस ने उसे आगे बढ़ने से रोकना चाहा। परंतु जुलूस में शामिल लोग अब तक पूरे जोश में आ चुके थे। पुलिस के साथ हाथापाई हो गई। पकड़–धकड़ हुई। कुछ छात्र तो भाग गए। लेकिन ज्यादातर लोगों ने अपने को गिरफ्तार करवा दिया।

उस दिन शाम तक मैं घर नहीं पहुंचा, तो मां चिंतित हो उठी। बाबूजी से बात की तो उनका माथा ठनका। उठकर चल पड़े मुझे ढूँढने। कालेज से पता चला कि मैं भी उसी जुलूस में शामिल था। बाबूजी क्रोध से हाँफते हुए कोतवाली थाने पहुँचे। वहाँ बड़े कमरे में कालेज के लड़के–लड़कियाँ भरे पड़े थे। उनको रातभर वहां रखा जाना था और सुबह होते ही छोड़ दिया जाना था। कई को उनके माता–पिता जमानत पर ले जा चुके थे या ले जा रहे थे। विशेषकर, लड़कियों को। परंतु जो अधिक विद्रोही प्रवृति के थे, वो जमानत पर छूटने को तैयार नहीं थे। वे लोग वहीं खाली धूल भरे कमरे में जमीन पर बैठे या लेटे राजनीतिक चर्चाओं में मशगूल थे।

बाबूजी ने मुझे थाने के कमरे में देखा, तो उनका पारा और चढ़ गया। क्रोध उन पर हावी हो गया और यह ख्याल ही नहीं आया कि वे मुझे साथ ले जा सकते हैं। परिणाम किसी के लिए भी अच्छा नहीं हुआ। मैं रातभर थाने में रहा।

घर आकर बाबूजी क्रोध में रातभर रह–रहकर बड़बड़ाते रहे, माँ को सुनाते रहे–''वहाँ देख जाकर, क्या लीला दिखा रहा है तेरा लाल। लड़के–लड़कियाँ एक ही कमरे में एक साथ लेटे हुए हैं। जो लड़का एक रात थाने में काट आए, वह केवल

बदनामी के सिवा क्या देख सकता है?''

सुबह के आठ बजे थे, जब मैं थाने से लौट कर घर आया था। बाबूजी दालान में बैठे मिले, लेकिन मुझ पर नजर पड़ते ही वे दूसरे कमरे में चले गए। मैं माँ के पास पहुँचा ही था कि उसने मेरे गाल पर दो चाट जड़ दिए और फिर खुद ही रोने लगी। दीदी ने माँ को चुप कराने का प्रयास किया, लेकिन वह विफल रही। उसने इशारे से ही माँ को चुप कराने को कहा। दीदी का संकेत पाकर मैंने माँ का हाथ थामा, तो वह फट पड़ी। बोली–''यह दिन देखने से पहले मैं मर क्यों नहीं गई? तुम थाने में रात बिताकर आओ और परिवार को बदनाम करो...'' माँ बोले जा रही थी। मैंने अपनी भूल स्वीकारते हुए उसे शांत रहने को कहा, तो वह मेरा हाथ पकड़कर बोली–''मुझे वचन दो कि अब से किसी सभा–जुलूस में नहीं जाओगे।''

ईद के दिन गाँव में खूब चहल–पहल होती थी। कहने को तो यह त्योहार मुसलमानों के मोहल्ले में मनाया जाता था, लेकिन उस रोज गाँव के सभी लोग मस्जिद के सामने के मैदान में होनेवाले जलसे में जमा होते थे। लोग एक–दूसरे के गले मिलकर खुशियाँ बाँटते थे, तब हिंदू–मुस्लिम एकता की मिसाल देखते ही बनती थी। हाँ, कभी–कभी कुछ दलों के राजनीतिज्ञ भी जलसे में शरीक होते थे। नेताओं की भाषणबाजी होती–आपस में शांति–सद्भाव से रहने की सीख दी जाती थी। लेकिन यह सब केवल दिखावा प्रतीत होता था। सब अपने स्वार्थ की खातिर जलसे में आते थे। चुनाव के वक्त इन्हीं राजनीतिज्ञों का सुर बदल जाता था, जिससे गांव में तनाव–सा माहौल बन जाता था।

उन दिनों मैं कालेज के प्राध्यापक त्रिपाठी सर से अक्सर यह सवाल किया करता था–''सर, संविधान में सबको समान नागरिकता मिली है। फिर कैसे और क्यों, समाज में धार्मिक, जातीय और सामुदायिक पहचान हावी है? इसके लिए कौन लोग जिम्मेवार हैं?''

त्रिपाठी सर समाजवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व और विचार उनकी सादगीपूर्ण जीवनशैली में दिखता भी था। अक्सर कक्षाओं में वे विद्यार्थियों से कहा करते थे–''सोशल इंजीनियरिंग व सामाजिक सद्भाव की बात करनेवाले राजनीतिज्ञों को कौमी एकता की बात करनी चाहिए, तभी इस मुल्क में अमन–चैन रह पाएगा।''

वे अपनी खीज यह कहकर निकालते–''भले अंग्रेजों ने 'फूट डालो, शासन करो' की नीति अपनाकर 200 वर्षो तक देश पर राज किया। लेकिन उन अंग्रेजों से हमारे नेता कम नहीं हैं। सत्ता की कुर्सी के लिए नेताओं ने धार्मिक, जातीय और सामुदायिक पहचान देकर समाज को बाँट दिया है। केवल अपना स्वार्थ साध रहे हैं। यह हमारी बदकिस्मती है.. आजादी के 62 वर्षो के पश्चात भी शांति और अमन–चैन के साथ रहने की बजाय हमें निरंतर तनावों, संघर्षो और स्थायी अशांति ही ध रोहर में मिली है। आखिर, कब चेतेंगे हम?''

अब के बरस अच्छी फसल हुई थी। घर में, खेत–खलिहान में अनाजों के ढेर लगे थे। घर में खुशियाँ छायी थीं। बाबूजी दीदी के लिए योग्य वर तलाशने लगे थे। वैसे दीदी के लिए कई रिश्ते आ चुके थे। बाबूजी, उन रिश्तों में केवल घर की पसंद देखना चाहते थे।

दीदी ने अभी बीए पास ही किया था कि उसके लिए एक रिश्ता और आया–बाबूजी के दूर की बहन के दूर के देवर का। काफी धनी था, लेकिन ज्यादा–पढ़ा लिखा नहीं।

दीदी सुनते ही बिगड़ गई – ''मैं नहीं करुँगी शादी किसी अनपढ़ पैसे वाले से।''

बाबूजी अपनी जिद पर अड़ गए थे कि इतना बड़ा परिवार हाथ से निकल न जाए। कई दिनों तक घर में झगड़ा होता रहा। लड़ती–लड़ती दीदी थक गई तो एक शाम वह बहुत रोई– माँ की गोद में सिर रखकर। तब वह बेबसी से बोली थी–''तुम कभी क्यों नहीं कुछ कहती माँ। क्या केवल शादी करने के लिए ही शादी की जाती है?''

माँ पहले की भाँति पूरी तरह चुप रही। अचानक वह उठ खड़ी हुई और बाबूजी से चिल्लाकर बोली–''मुझे नहीं करनी है अपनी बेटी की शादी आपके किसी रिश्तेदार से।''

इससे पहले कि बाबूजी माँ की बात पर अपनी कोई प्रतिक्रिया प्रकट करते, माँ तेजी के साथ उनके पास पड़ी मेज तक पहुँची और उस पर पड़े उनके शराब के गिलास को उठाकर पूरे जोर से सामने वाली दीवार पर दे मारा। तूफान के बाद शांति छा गई। इसी के साथ दीदी के रिश्ते से जुड़ी बात भी खत्म हो गई।

कब दीदी ने एम.ए. किया, कब नौकरी के लिए आवेदन भरा, घर में किसी को पता ही नहीं चला। एक दिन उसने अचानक एलान कर दिया–''मुझे नौकरी मिल गई है। दिल्ली में, अगले सोमवार को ज्वाइन करने जाना है।''

यह सुनते ही आँगन में सूत काट रहे बाबूजी तिलमिला उठे। वे दाँत पीसकर बोले– ''तूने बताया क्यों नहीं हमें? बता ही तो रही हूँ।'' इतनी दृढ़ता पहले कभी नहीं रही दीदी के स्वर में। ''ले, संभाल ले, इसे''। बाबूजी इतना कहकर अपने दायित्व का बोझ भी माँ के कंधों पर डालकर दूसरे कमरे में चले गए। जिस दिन दीदी को दिल्ली जाना था, मैं दिनभर उसके पीछे–पीछे डोलते रहा।

''सुन बबुआ, मुझे चिट्ठी लिखते रहना नियम से। यहां का सब हाल भी।''

''तुम दिल्ली जाकर हमें भूल तो नहीं जाओगी?''

''हट पगले, अपनों को कोई भूलता भी है''– दीदी डबडबायी आंखों से बोली और फिर आँसू उसके गालों पर लुढ़क आए।

माँ और मैं उसे स्टेशन पर छोड़ आए। बाबूजी, दीदी से नाराज रहे और उसे छोड़ने तक नहीं गए।

दीदी एक प्रकार से तभी से घर से चली गई थी। वर्ष में कुछ दिनों के लिए घर आती, जैसे कोई कर्तव्य निभा रही हो। दीदी ने आर्थिक सहायता बहुत की परिवार की। मेरी पढ़ाई का खर्च तो उसने पूरा अपने ही ऊपर ले लिया।

मैं कहता–"दीदी, मैं कैसे भूलूँगा तुम्हारे इस एहसान को। इतना पढ़ न पाता, तो जाने आज क्या होता मेरा। तुम ठीक कहा करती थी कि इंसान को शिक्षा ठीक से ग्रहण करनी चाहिए। इसका जीवन में बहुत महत्व है। और कोई साथ नहीं निभाता। पढ़ाई या काम ही साथ रहते हैं इंसान के।"

मैं एम.ए. कर चुका था। घर में अब दो बेकार थे– मैं और बड़े भैया। बाबूजी की आँखों में जाने ऐसा क्या होता कि मैं भीतर तक काँप जाया करता था। जाने बाबूजी के मन में बड़े भैया के लिए कैसा विष भरा था कि उनकी चर्चा छिड़ते ही घृणा से कहते–"मेरे सामने उसकी बात मत करो।"

घर में हंगामा उस वक्त मच गया, जब एक दिन माँ के नाम दिल्ली से दीदी का एक खत आया। खत में लिखा था कि वह विवाह करना चाहती है अपनी पसंद के आदमी के साथ। सुनकर बाबूजी आग बबूला हो गए।

"अपनी मर्जी से करनी है शादी, तो किसी और को बाप बना लो"– इतना कहकर बाबूजी ने खत के टुकड़े–टुकड़े कर दिए। फिर क्रोध में दहाड़ते हुए बोले–"जब तक जीवित हूँ मैं उसका मुँह न देखूँगा।"

माँ ने टुकड़े उठाकर बड़े यत्न से टेप लगाकर खत जोड़े और उसे सहेजकर रखती हुई बोली–"तूने ठीक फैसला किया है बेटी। हम तो तेरे विवाह की बात ही भूल ही गए थे। तेरे पैसों से आराम मिलता हैं न।"

बाबूजी विचलित हो उठे थे। दीदी के लिए नहीं, बल्कि यह सोचकर कि अपने परिचितों के सामने कितनी शर्मिंदगी उठानी पड़ेगी? एक–एक व्यक्ति ताना कसेगा।

दीदी ने दिल्ली हाईकोर्ट में जाकर प्रेम–विवाह कर लिया। उसके बाद वह पहली बार घर आई तो पति भास्कर के साथ। पति के संग दीदी दो दिन रही, लेकिन बाबूजी नाराज ही रहे।

बाबूजी की नाराजगी देखकर तीसरे दिन ही दीदी दिल्ली लौट रही थी। हम जंक्शन पहुँच चुके थे। ट्रेन आने में विलंब था। जीजा–दीदी को छोड़ने के लिए माँ के साथ केवल मैं आया था। हम गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़े थे।

एकांत में खड़ी दीदी ने मुझे इशारे से बुलाया। वह उदास दिख रही थी। दीदी मुझसे बोली–"जानते हो, यहाँ आती तो मैं तेरे कारण हूँ। माँ के कारण भी, और किसी से तो कोई लगाव नहीं रह गया है।"

कुछ रुककर वह फिर बोली–"बहुत–सी चीजें हैं इस घर की, जो मुझे आत्मबोध कराती रहती हैं, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकती हूँ। तुझे याद है वो सुबह, जब तुम थाने से लौटा था डरा–सहमा। मैंने ही माँ को बहुत समझाया था कि मेरा भाई देव सबसे होनहार है। गलत रास्ते पर कभी जा ही नहीं सकता। बाबूजी तो तुम्हें भी भैया की तरह ही समझते रहे। जानते हो, बाबूजी ने कभी भी हमारी आकांक्षाओं और सपनों को समझने की जरूरत नहीं समझी..." दीदी बोले जा रही थी और मैं ध्यान से सुन रहा था।

सहसा प्लेटफार्म पर बाबूजी नजर आए। बेटी की विदाई पर इस बार पिता का हृदय पसीज गया था, कभी मुँह नहीं देखने का संकल्प टूट चुका था। वे जैसे ही निकट पहुँचे कि जीजा–दीदी ने आगे बढ़कर उनके चरण स्पर्श किए। फफकते हुए बाबूजी ने दोनों को गले से लगा लिया। कुछ कहने के लिए उनके होंठ फड़फड़ाए और फिर जो शब्द होंठ से नहीं निकले, वो उनकी बोलती आँखों से आँसू बनकर बहने लगे। बहुत ही कारुणिक दृश्य था–हम सब रो रहे थे।

सीटी बजाती हुई ट्रेन आकर प्लेटफार्म पर लग चुकी थी। जीजा–दीदी ट्रेन में सवार हो गए। जैसे ही ट्रेन खुली, हमने हाथ हिलाते हुए दोनों को विदाई दी।

हम भारी कदमों से घर लौट आए। ऐसा पहली बार हुआ था कि हम एक–दूसरे की भावनाओं में बहे जा रहे थे– न जाने किस आत्मबोध से। दीदी की विदाई के पश्चात बाबूजी के व्यवहार में काफी बदलाव आ गया था।

बाबूजी जमीन से जुड़े व्यक्ति थे, संघर्षशील थे। जीवन के संघर्षो ने उन्हें अनुभवी व्यक्ति बना दिया था। इसलिए जब मिजाज ठीक रहता, तो अक्सर बाबूजी कहा करते थे–"तुम्हारे नाना के संग जब बंगाल में मैंने रोजी–रोटी शुरुआत की थी, तब मेरे पास इतने पैसे भी नहीं थे कि ट्राम या बस से जा सकूँ। मैं ज्यादातर घर से होटल तक दूध पहुँचाने पैदल ही चला करता था–एक बात जीवन में सदा स्मरण रखो कि शिखर पर हमेशा जगह होती है, लेकिन वहाँ तक जाने के लिये कोई लिफ्ट नहीं है, संघर्ष करना पड़ता है, सीढ़ियाँ पैदल चढ़नी पड़ती है।

◗ हरि निवास, चिरैयाटांड़ (कुम्हार टोली)
कंकड़बाग, पटना–800020।

स्वारथ के ही कारणे साधुन धरा शरीर

– डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना

'संज्ञा और विशेषण' जब एक ही शब्द एक ही साथ दोनों गुणों से युक्त हो जाए तो समझिए कि संसार के लोगों को मुक्ति–मार्ग मिल गया। ऐसा भले ही त्रेता या द्वापर में हुआ हो या न हुआ हो, किंतु कलयुग में यह घटना आम ही नहीं सरेआम है। साधु शब्द हमारे सामने आते ही किसी सज्जन की तस्वीर सामने आये अथवा न आये, किन्तु लंबी–लंबी दाढ़ी, माथे पर तिलक त्रिपुंड, हाथ में कमंडल और चिमटा लिए एक ऐसे व्यक्ति का चित्र जरूर आ जाता है जो कभी तो बिल्कुल निरीह लगता है अथवा कभी–कभी भयानक। निरीह इस अर्थ में कि वह कभी–एक लाचार आदमी की भाँति याचना की मुद्रा में लगता है तो कभी यही चित्र शुक्राचार्य की भाँति क्रोध, घमंड और कुटिलता का मिश्रण लगता है। कलयुग में साधु और असाधु में अंतर करना उतना ही कठिन है जितना पानी से दूध को अथवा यों कहें कि दूध से पानी को अलग करना और यह अलगाव हो भी तो कैसे? लालच की लेई से जिसकी दाढ़ी सटी हो, और स्वारथ की गोंद से पहनावा तो फिर यह चोला उखड़ने वाला थोड़े ही है। बड़े–बड़े पहलवान भी लग जाएँ तो इस चोले का हरण अर्थात् चोला–हरण नहीं कर सकते आखिर यह हो भी तो कैसे? जब कलयुगी; महापुरुषों का उन्हें आशीर्वाद प्राप्त है तो क्या मजाल कि उनकी साधुअई की कुर्सी चली जाय। जिसे त्रिदादिदेव बाहुबली, रंगदार और राजनेता का वरदान मिला हो तो यह चोला उतरे भी तो कैसे, इसी वेश में तो देश को भी भरमाना है। साध्वियों को जुटाना है। देवदासियों को उनके चरणों की दासी बनवाना है, ये तो गुरुघंटाली साधु है तो हर असाधु कार्य बिना लाइसेंस के ही कर सकते हैं, वरना सच्चे साधुओं को तो भीख माँगते–माँगते भी रोटियों के लाले पड़े रहते हैं और पाँव के छाले चिढ़ाते रहते हैं।

बहुत अध्ययन और शोध के पश्चात् मैंने साधुओं की तीन श्रेणियाँ बनायी हैं। योगी साधु, भोगी साधु और रोगी साधु। योगी साधु वे लोग हैं, जिनका योग साधना से सीधा संबंध है जैसे अर्थशास्त्र का रुपये से। औषधि के देवता अश्विनी कुमार से प्रशिक्षित ये ज्ञानी 'गुणी' जन योग के साथ औषध निर्माता भी होते हैं। इनकी योग–साधना और औषधि की दुकानदारी में अन्योन्याश्रय संबंध होता है। और यही संबंध इनकी दवाओं को अचूक बनाता है जो चुक गया वो गया काम से। बस एक बात का ध्यान रखना है और वह है 'परहेज', दवा से नहीं कंजूसी से। योगी साधुओं की योग–साधना का लाभ तभी होता है जब साधक कंजूस न हो। योगी–साधुओं की दुआ चाहिए तो उनके फैक्ट्री की दवा भी खानी होगी, वरना रोग के ठीक होने की कोई गारंटी नहीं। धन्य है इनका योग–शास्त्र और इनके कारखाने की दवाइयाँ। दवा फायदा करे या न करे योगी गुरुओं का नाम तो फायदा कर ही जाता है। ये पारस पत्थर की तरह होते हैं इनके संपर्क में आने वाले दवा खाते–खाते स्वयं योग गुरु हो जाते हैं। बल्कि यों कहें कि गुरू गुड़ और चेला चीनी हो जाता है।

साधुओं की दूसरी श्रेणी है– भोगी साधु। इनका साम्राज्य भी बड़ा ही जादुई और हिप्टोनिज्म से भरा होता है। देहातों में इसे आँख पर पट्टी बाँधना कहते हैं। और इनके शिष्यों में वे लोग अधिक होते हैं जो 'आँख के अंधे और गाँठ से पूरे हैं।' इस श्रेणी के साधु स्वयं सम्मोहक होते हैं– दाढ़ियाँ भी हो सकती हैं और नहीं भी। वैसे भी साध्वियों को आजकल सफाचट साधु ही ज्यादा भाते हैं। इनका चेहरा चमकदार और आकर्षक होता है। बातों से मधुरस टपकता है जिसका– पान करने वाला या करने वाली–दोनों ही 'आध्यात्म' की सीढ़ी पर सवार होकर ईश्वर से बातें करते हैं। ये साधु सेलीब्रेटी कहलाते हैं। ए.सी. कमरे और मँहगी कार में इनका विश्वास होता है। इनका आसन इतना मँहगा होता है कि स्वर्ग में बैठे इंद्र भी ईर्ष्या करने लगते हैं। इंद्र के दरबार की तरह इन साधुओं का भी दरबार लगता है जहाँ उर्वशी और मेनका सदृश सुंदरियों का मेला लगता है बल्कि बाजार कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनका मठ किसी पंचसितारा होटल से कम नहीं होता, रेशमी कालीन और संगमरमर से सजा इनका दरबार किसी तिलस्मी दुनिया से कम नहीं होता। इनकी चेलियाँ साधुनी कम तितलियाँ अधिक लगती हैं। ये साधु अपनी सेवा में इन चेलियों का भरपूर उपयोग कर भर मन आशीर्वाद बाँटते हैं, यहाँ तक कि इसी बदौलत सत्ता की सीढ़ी तक पहुँचना इनके लिए आसान हो जाता है।

साधुओं की तीसरी किस्म है–रोगी साधु या यों कहें कि भुक्त भोगी साधु। मैं ऐसे ही साधुओं की श्रेणी को सर्वमान्य और सहजभाव से जीने वाले प्राणियों की गिनती में रखता हूँ। इसमें बहुधा पारिवारिक जिम्मेदारियों से भागे हुए या यों कहें भगोड़े होते हैं। कुछ पत्नी पीड़ित होते हैं जो बेचारी के बेलन से तंग आकर प्रभु का चरण पकड़ लेते हैं बल्कि स्वामी चरणदास बन जाते हैं। इन्हीं हेराफेरी में माहिर साधुओं के लिए कहा गया है– 'चोर चोरी से जाय, हेराफेरी से ना जाय'। कुछ नहीं तो मंदिर के संपत्तियों की हेराफेरी तो कर ही लेते हैं। कभी–कभी भगवान की मूर्ति को भी चुराकर पुण्य के भागी बनते हैं। गाँव–घर वालों

ने न उनके प्रेमभाव को सम्मान दिया न 'ढाई आखर प्रेम' का महत्व समझा। फिर तो इस परिस्थिति का मारा कोई साधु हो जाय तो इसमें गलत क्या? हो गये रोगी साधु प्रेम रोग से पीड़ित। हाँ ऐसे साधुओं को सच्ची साधुनी मिल जाये तो फिर मात्र उसके दर्शन सुख से ही इनका रोग जाता रहता है उनके हाथी की बनी खिचड़ी सोलह क्या सौ व्यंजनों का स्वाद देती है और रोटी, पूछिए मत सारी गोटी लाल कर देती है। ईश्वर भला करे ऐसे साधुओं का– जिनका कल्याण भाव ही हमारे देश का चला रहा है। सड़क से संसद तक ऐसे ही साधुओं का प्रभाव है कि अब तक हमारा लोकतंत्र जीवित है। ये अपने तंत्र–मंत्र एवं जंत्र से जनतंत्र को बचाए हुए हैं। ऐसे परमार्थियों को जनता भले स्वार्थी कह लें किंतु ये होते हैं बड़े परमार्थी। अगर ये नहीं होते तो न देश होता न रावण राज्य। इनके इन्हीं सब गुणों के कारण बहुतों माता–पिता ने अपने पुत्रों का नाम साधु रख दिया है। कोई साधु सिंह है तो कोई साधु लाल, कोई साधु गोप है तो कोई साधु शरण। धन्य हैं ये माता–पिता जो साधुओं की महिमा से परिचित हैं। काश! मैं भी साधु होता।

औजार

❑ डॉ. गोरख प्र. 'मस्ताना'

छात्र कहाँ हैं? / कौन है? / वो तो
स्टूडेंट है / कलयुग का
विवेक शून्य / विचारों से अंधा
जो अध्ययन के नाम पर
करता है धंधा
चरस, स्मैक, दलाली का
रूप रंग मवाली का
आधुनिक एकलव्य
आचार्यों का बना औजार
उनकी स्वार्थ–सिद्धि का हथियार
अँगूठे काटकर देता नहीं
अँगूठा दिखाता है
ज्ञान के मंदिर में / अज्ञान का दीप
जलाता है
पराये या अपनो को
माता–पिता के सपनो को
दिखाता है अँगूठा
सड़े / सिकड़े / संस्कारों से सज्जित
विद्यार्थी / विद्या की अर्थी
ही तो ढो रहा है
अज्ञान का बीज बो रहा है
उसे नहीं चाहिए / सीमित सम्मान
वेद पुराण
उसे तो छूना है आसमान,
फिर राजनीति ही क्यों न करे
क्यों करे रातों की नींद हराम
किताबी पन्नों में / किसी
मॉडर्न गुरु का कृपा–पात्र
बन जायेगा
दूर्योधन सा तन जायेगा
सत्ता की सीढ़ियाँ होंगी उसकी
गुलाम
सुख और सत्ता तमाम
मोतियों से आँगन भर जायेगा
भले ही अंतर का छात्र मर जाये
तो मरे।

◗ पुरानी गुदरी, महावीर चौक, बेतिया, चंपारन, बिहार

ग़ज़ल

❑ डॉ. रामलखन राय

जीतना है ज़िंदगी की जंग यारों।
इसलिए आओ चलें मिल संग यारों।।
हो फ़िजा खुशबू सनी लबरेज सारी।
सीख लें हम इस कला के ढ़ंग यारों।।
हम वफा के फूल से दामन सजाकर।
और भर दें खूबसूरत रंग यारों।।
आदमी खिलता रहे उस फूल जैसा।
जो कभी भी हो नहीं बदरंग यारों।।

◗ जागेश्वरी सदन, माधुरी चौक, बहादुरपुर दक्षिण, वार्ड सं.29, समस्तीपुर–848101 (बिहार)

एन.जी.ओ

❑ संतोष कुमार

शब्दकोष का नया शब्द।
समाज को स्वस्थ / शिक्षित / परिष्कृत करने का सुलभ साधन या प्रसाधन जो कह लो / जैसे कह लो।
बड़ा व्यापक है यह शब्द / जिसका अर्थ भले ही समझ गयी सरकार / किंतु इसके मर्म को समझने के लिए / धोनी पड़ेगी आँखों से शर्म / क्योंकि एन.जी.ओ. वही चला सकता है / जिसने धो दी हो / आँखों से पानी / और फंडींग के पीछे गला दी हो / अपनी जवानी।
आखिर बुढ़ापे का खर्च / कौन उठाएगा
ये एन.जी.ओ. की / फंडींग से ही तो आएगा।
तो आओ भाई / मिलकर एक एनजीओ चलायें
अपना भविष्य सुखद बनायें।

◗ आर.जेड.एच / 940, राजनगर पार्ट–2, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली–110045

डॉ. वैद्यनाथ शर्मा : निहायत सीधे–सादे और नेक इंसान

❑ सिद्धेश्वर

ऐसा क्यों होता है कि रचनाकार हों या साहित्यकार, राजनीतिक हों या समाजसेवी, पत्रकार हों या कलाकार उनको हम जीते जी ठीक से पहचान नहीं पाते हैं, उन्हें उनका देय नहीं दे पाते हैं और देहावसान के पश्चात् उन्हें सिर–माथे पर बिठा विलाप करते हैं। हिंदी साहित्य के अद्वितीय चिंतक और लेखक तथा लोकतांत्रिक चेतना के समकालीन प्रतिनिधि कथाकार डॉ. वैद्यनाथ शर्मा, जिन्हें लोग बच्चा बाबू के नाम से ज्यादा जानते और पुकारते थे, साहित्य में सपने देखने और उन्हें जमीन पर उतारने वाले एक ऐसे ही साहित्यकार थे जिन्हें जीते जी लोगों ने ठीक से पहचाना नहीं, पर महाप्रयाण के पश्चात् लोग विलाप करते दिखाई देते हैं। उनके साथ बिताए दिनों को आज मैं याद करता हूँ, तो आँखें आँसूओं से भर आती हैं और जब मैं इनकी रचनाओं से गुजरता हूँ, तो इनकी साहित्यिक आस्था, निष्ठा और अनुशासन का मैं कायल हो जाता हूँ। वक्त की आँधियाँ गुजरती हैं, तो हर शख्स के चेहरे पर धूल की परतें जमा देती हैं। यादों की गलियों में तड़पता मन, हर समय एक ही पुकार करता है कहाँ है उसका मीत? यादें सिर्फ बहाना नहीं, बल्कि चाहत की, परंपरा की पहरेदार भी हैं।

बच्चा बाबू का निधन विगत 27 दिसंबर 2009 को हो गया। वे पिछले कई माह से अस्वस्थ चल रहे थे। उनका निधन न केवल हिंदी साहित्य जगत के लिए एक अपूरणीय क्षति है, बल्कि इससे हमारे सामाजिक जीवन में भी एक बड़ा अंतराल उपस्थित हो गया। दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका 'विचार दृष्टि' के सहयोगी रचनाकार और हमारे मार्गदर्शक डॉ. शर्मा जी के निधन से ऐसा लगता है जैसे हमारे परिवार का एक लोकप्रिय सदस्य हमसे दूर चला गया। सादगी, सहृदयता, सरलता और सदाचार को सर्वोपरि मूल्य मानने वाले बच्चा बाबू, जिन्हें बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री नीतीश कुमार सदैव अभिभावक मानते रहे, ईमानदारी और नैतिकता में अपार आस्था रखते थे। उनके निजी जीवन और लेखकीय व्यक्तित्व के बीच काफी सामंजस्य था। उनकी कथनी और करनी में कहीं कोई अंतर या विचलन कभी नजर नहीं आया। 'सादा जीवन, उच्च विचार' को अपना धर्म समझने वाले डॉ. शर्मा जी के शयन व अध्ययन कक्ष को भी मैंने 7 जनवरी 2010 को उस दिन देखा जब पटना जिला के मोकामा स्थित सकरवार टोले में आयोजित उनकी पावन स्मृति में श्रद्धांजलि सभा में मैं भाग लेने गया था और उनके साधारण अध्ययन कक्ष में जाकर मैं दंग रह गया, उनकी सादगी और सरलता देखकर, भले ही व्यावसायिकता और चतुराई की नव संकृति में जकड़े आज के समाज में ये सब मूल्य उतने प्रासंगिक नहीं रह गए हैं। लोकतांत्रिक परंपराओं में विश्वास रखने वाले बच्चा बाबू ,छोटे–बड़े में कोई भेद नहीं करते थे। उनका पूरा जीवन साहित्य और संस्कृति को समर्पित रहा। हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए वे आजीवन कार्य करते रहे। एक नेक और ईमानदार लेखक के नाते मेरे साथ ऐसे लोगों की संख्या काफी है जो उनकी बहुत इज्जत करते थे, आज के युग में डॉ. शर्मा सरीखा सीधा–सरल, नेक इंसान मिलना कठिन है।

बच्चा बाबू अब हमारे बीच नहीं हैं, मगर वे हमारे बीच अपनी उन कृतियों में जरूर उपस्थित हैं, जो वाकई तारीफ के काबिल हैं।

डॉ. वैद्यनाथ शर्मा ने अपनी कृतियों में जिस तरह जीवन से जुड़े विविध रंगों को उकेरा है उनमें उनकी सोच और कल्पनाओं की झलक मिलती है और इनकी कृतियों को सार्थक बनाती है। डॉ. शर्मा की लिखी कहानियाँ समाजरूपी चांद की अज्ञानता और अविश्वास को उजागर करती हैं और निश्चित ही साहित्य की सीमा–रेखाओं का विस्तार करती हैं। इनकी कथाएँ और भी कुछ दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सामान्य–सी दिखने वाली कहानियों की असामान्यता मुखरित प्रतीत होती है। इनकी अन्य कृतियों में भी अतीत और वर्तमान् तो मौजूद है ही, साथ ही साथ भविष्य की राहें भी बनाती दिखाई पड़ती हैं। इनके सृजन सरोकारों के आलोक में उसे रेखांकित करते हुए बच्चा बाबू के व्यक्तित्व और कृतित्व को बड़ी बारीकी से समझा जा सकता है। इनके द्वारा अपनाई गई अन्यान्य विधाओं में इन्होंने भरपूर लिखा है और डूबकर लिखा है जिनकी परत पर पड़ी धूल झाड़कर उनकी वास्तविकता को उजागर किया जा सकता है। इनकी कविताएँ और आलेख भी अपने रंगों–खुशबू–आब से पाठकों को आकृष्ट करने में सफल है। इनके निबंध भी निस्संदेह उत्कृष्ट हैं। उन्होंने अपनी सधी हुई लेखनी से समाज का सहज, स्वाभाविक चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त इनकी रचनात्मक अनन्यता भी विशेष सराहना की हकदार है और कसी हुई तथा मनमोहक हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं और कर्मों के माध्यम से समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है।

कहना नहीं होगा कि डॉ. वैद्यनाथ शर्मा जी अपनी विचारधारा के जरिए हम लोगों के आदर्श बन चुके थे। उनके जीवन से हम लोगों को प्रेरणा लेनी होगी। डॉ. वैद्यनाथ शर्मा ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं में निराकार को आकार में बाँधने का प्रयास करते हुए उसे मूर्तता प्रदान की है वह काम कठिन ही नहीं, चुनौती भरा कार्य है जो सबके लिए संभव नहीं। दशकों की समस्या का समाधान डॉ. बच्चा बाबू ने सहज ढंग से कर

दिया है।

बच्चा बाबू के साथ जिए क्षणों को जब मैं याद करता हूँ, तो दिल भर आता है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष पद का दायित्व जब बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी ने मेरे दुर्बल कंधों पर डाला, तो जितनी प्रसन्नता डॉ. वैद्यनाथ शर्मा जी को हुई, उतनी शायद ही और किसी साहित्यकार को हुई होगी। मुझे अच्छी तरह याद है संस्कृत बोर्ड कार्यालय से कुछ ही दूरी पर श्री कृष्णनगर स्थित अपने निवास से आए दिन जब हमारे पास वे आते थे, तो अपने अमृत–वचन से मुझे प्रोत्साहित कर जाते थे। जब कभी भी 'विचार–दृष्टि' के लिए किसी खास विषय पर हमने उनसे रचना माँगी उन्होंने अपनी धारदार कलम चलाकर अपनी रचना से पत्रिका को पठनीय बनाया। विगत 28 दिसंबर 2008 को बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड द्वारा संस्कृत शिक्षा की गुणवत्ता को केंद्र में रखकर पटना के तारामंडल में बारह घंटे की राष्ट्रीय संगोष्ठी जब आयोजित की गई थी, तो उसके एक सत्र में विशिष्ट वक्ता के रूप में न केवल उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए थे, बल्कि पूरे आयोजन में उन्होंने एक अहम भूमिका निभाई थी। फिर 2009 में 28 एवं 29 दिसंबर को बोर्ड के तत्त्वावधान में संस्कृत से जुड़े विभिन्न संगठनों–संस्थानों की सहभागिता से पटना के श्रीकृष्ण स्मारक भवन में जब संस्कृत शिक्षण पर केंद्रित दो–दिवसीय राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन का आयोजन किया गया, तो उसमें उनकी अनुपस्थिति काफी खली। मैंने ऐसा महसूस किया कि यदि वे स्वस्थ रहते, तो वे हमारे दाहिने हाथ होते। यह तो महज संयोग कहा जाए कि डॉ. वैद्यनाथ शर्मा जी की अनुपस्थिति में शिक्षा शास्त्री एवं संस्कृताचार्य तथा कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा के पूर्व कुलपति डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार का पूरे आयोजन के दौरान अपेक्षित सहयोग मिला। विधि का विधान भी विचित्र है कि सम्मेलन प्रारंभ होने की पूर्व संध्या पर बच्चा बाबू का महाप्रयाण हो गया। आप समझ सकते हैं कि उनके असामयिक निधन का समाचार सुनकर मुझे कितनी पीड़ा हुई होगी और मैं कितने मानसिक तनाव से गुजरा होऊँगा। यह तो कहिए कि समय–समय पर बच्चा बाबू से जो मुझे प्रोत्साहन मिलता था और उनके विचारों से जो प्रेरणा मिलती थी, उससे मैं आगे बढ़ता गया और उनकी स्मृति को संजोए अपने पथ से मैं विचलित न हुआ। सच मानिए, तो उक्त सम्मेलन को सफल बनाने में उनकी प्रेरणा ने बहुत हद तक मुझे बल प्रदान किया। मैं उनकी स्मृति को आज यह संस्मरण लिखते वक्त इसलिए नमन करता हूँ कि दूसरी दुनिया में रहकर भी वे मुझे इसी तरह रास्ता दिखलाते रहें और भारतीय साहित्य के उन्नयन के पथ पर मैं अग्रसर होता रहूँ। एक तरह से मेरी ताकत के वे स्रोत थे और वह स्रोत सूखने न पाए, जगन्नियंता से मैं यही प्रार्थना करता हूं।

डॉ. वैद्यनाथ शर्मा का जीवन, समाज और साहित्य को गौरवान्वित करने के लिए सदैव समर्पित रहा। साहित्य के किसी भी क्षेत्र में शोहरत हासिल करने के लिए समर्पण, निष्ठा व लगन की जरूरत होती है और इन विशेषताओं से डॉ. शर्मा का व्यक्तित्व भरा था। प्रतिभा कभी तिरस्कृत नहीं हो सकती। आज जिस तेजी से युवा पीढ़ी के साहित्यकार अपने कर्तव्य और साहित्य से भटक रहे हैं और बहुत जल्द पैसा एवं शोहरत हासिल करने के लिए साहित्य के प्रति अपनी जिम्मेवारी को भूलते जा रहे हैं उन्हें बच्चा बाबू के व्यक्तित्व से सीख लेने की आवश्यकता है, जिनका कहना था कि किसी भी साहित्यकार को सम्मान, सराहनीय काम के लिए मिलता है, मगर आज की नई पीढ़ी जल्दबाजी में पैसा और सम्मान दोनों पा लेना चाहती हैं। डॉ. वैद्यनाथ शर्मा ने अपने जीवन में जो कुछ पाया, चाहे वह शोहरत हो या पैसा, अपनी मेहनत और लगन से ही पाया था। दरअसल, जो असल चीज होती है, उसे संरक्षण से बहुत फर्क नहीं पड़ता, लेकिन यह समझना होगा कि जब साहित्यकारों की हालत इतनी खस्ता होगी कि वह सामान्य जरूरतें भी पूरी न कर पाएँ, तो वे साहित्य की सेवा ठीक से कैसे कर पाएँगे। मुझे खुशी इस बात की है कि बच्चा बाबू को इन हालातों से गुजरने की नौबत नहीं आई। आखिर तभी तो वे लगातार अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य को समृद्ध करते रहे और अपनी मेहनत के बल पर मगध विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष के पद को भी उन्होंने सुशोभित किया। जीवन के अंतिम क्षण में वे जिन हालातों से गुजरे वह इसलिए अच्छा नहीं रहा कि इधर लगभग एक साल से वे काफी अस्वस्थ चल रहे थे और दिल्ली जाने के बाद उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरा, मगर पटना वापस आने के बाद एक समय ऐसा आया कि वे काल के गाल में जाने से नहीं बच सके और बचते भी तो कैसे, क्योंकि काल–कवलित होने से आज तक कोई बचा है क्या? बच्चा बाबू ने अपने जीवन में जो भी किया, दूसरों के लिए किया, यही महत्वपूर्ण है। मौजूदा दौर में जब सबके सब एक ही ओर चलते जा रहे हैं, केवल अपने लिए दौड़ रहे हैं और दूसरों का जीवन दूभर कर रहे हैं तो ऐसे में बच्चा बाबू के कर्म से पाठ लेकर लोग सभ्य व सुसंस्कृत बन सकते हैं, लोगों में मानवता की भावना जागृत हो सकती है। एक–दूसरे को तभी सिखाया जा सकता है, जब एक–दूसरे के लिए जिया जाए, दूसरे के लिए त्याग करना सीखा जाए। जीवन जीने का असली मूल्य यही है जिसे बच्चा बाबू ने सिखाया, दूसरों के लिए जीने का मर्म समझाया।

सादा जीवन और उच्च विचार के प्रतीक डॉ. वैद्यनाथ शर्मा जी से मेरी जान–पहचान लगभग दो दशक से ऊपर की रही है। जब भी मैं उनसे मिला, उनका मृदुल स्वभाव और उनकी प्रतिभा मुझे प्रभावित करती रही। साहित्य और सामाजिक कार्यक्रमों के अलावा राजनीतिक कार्यकलापों में भी वे खुलकर भाग लेते थे। साथ ही साहित्यिक–गोष्ठियों, कवि–सम्मेलनों तथा विद्वज्जनों के संभाषणों में शरीक होकर वे अपनी विद्वता एवं प्रतिभा का परिचय देते थे। सौम्य, साँवले, आँखों पर चश्मा और धोती–कुरता धारण किए डॉ. शर्मा जी के भीतर गंभीर चिंतन का प्रतिबिंब उनके चेहरे से स्पष्ट झलकता था। इनकी साधना और चिंतन की धारा की रोशनी सदा और सर्वदा लोगों को आलोकमय करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। भौतिक रूप से आज वे हमारे बीच नहीं रहे, पर वे अपनी कृतियों और यश–काया में सदैव अमर रहेंगे। निम्न शाश्वत पंक्तियों से मैं उन्हें अपनी श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए उनकी स्मृति को नमन करता हूँ :–

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्ध कविश्वराः
नास्ति येषां यशः काय जरामरणजं भयः।

◗ अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना

बचपन

❑ गोरख प्रसाद 'मस्ताना'

खो रहा है, प्यार का आधार बचपन,
उम्र दस की बस। लगे मक्कार बचपन!
कलम के बदले तमंचे थामकर
लग रहा है दरिन्दा खूंखार बचपन!
देव दर्शन का जो दुर्लभ तत्व है,
खा रहा वो समय की दुत्कार बचपन!
बुढ़ापे का सहारा समझी थी जिसको,
उसी माँ से कर रहा तकरार बचपन!
लिखने से पहले मिटाया जा रहा है,
सह रहा है, गरीबी की मार बचपन!
फूल बनकर जब वो टँगता कोट में,
तभी हो पाता है, सच साकार बचपन!

◗ आर.जेड.एच. 940, राजनगर पार्ट–2,
पालम कालोनी, नई दिल्ली–110045

द्विपदियाँ

❑ डॉ. रामनिवास 'मानव',

पछतावे में जीवन बीता।
काम न आई भगवद्गीता।।
जब–जब भी बहते हैं आँसू।
कितना कुछ कहते हैं आँसू।।
हर प्राणी की यही कहानी।
दिल में दर्द, दृगों में पानी।।
अंधेरे से ही जो डरेगा।
कैसे उजाला वो करेगा।।
तपकर धूप में निखरा यहाँ।
बन खुशबू वही बिखरा यहाँ।।
गिरकर भी जो हुआ खड़ा है।
सदा वही तो हुआ बड़ा है।।
तू कहता है, राम बड़ा है।
मैं कहता हूँ, काम बड़ा है।।
न्याय, धर्म, ईमान कहाँ है।
बिक्री का समान यहाँ है।।

◗ 706, सैक्टर–13, हिसार, हरियाणा

हिंदी की दशा

❑ निशानाथ अवस्थी 'निःशंक'

दिन पर दिन हिंदी दुखी, है अपने ही गाँव।
हिंदी भाषी दे रहे, खुद हिंदी को दाँव।।
हिंदी अपनाओ कहें, जो सबसे इस ठाँव।
उनके बालक बैठते, अँग्रेजी की छाँव।।
हिंदी से देते अधिक, जो इंग्लिश को मान।
ऐसे अधिसंख्यकों को, अधकचरा ही ज्ञान।।
निज वाणी में ओज अरू, राष्ट्र भक्ति का भाव।
हिंदी में अभिव्यक्ति भी, करती अधिक प्रभाव।।
यदि चाहो संसार में, भारत की पहचान।
सब मिल संवर्धन करो हिंदी का सम्मान।।
राष्ट्रएकता की उठी, चारों ओर सुगंध।
ग्रहण अगाथा* जब करे, हिंदी में सौगंध।।
जिस व्यापारिक कम्पनी, का इंग्लिश साहित्य।
नासमझी में भोक्ता, ठगे जा रहे नित्य।।
अंग्रेजी के मोह का, देखो कैसा खेल।
आठ लाख से भी अधिक, छात्र हो गये फेल** ।।

[* संसद सदस्य अगाथा संगमा द्वारा लोकसभा की सदस्यता की शपथ के संदर्भ में।
**माध्यमिक शिक्षा परिषद, उ.प्र. की 2009 की हाई स्कूल परीक्षा के परीक्षाफल के संदर्भ में।]

◗ 205, ऊँचाथोक, हरदोई (उ.प्र.)

सर गणेश दत्त

– सिद्धेश्वर

आज जब हम सर गणेश दत्त की 143वीं जयंती मना रहे हैं, तो यह विचार करने के लिए हम विवश हैं कि शिक्षा में बढ़ती अराजकता और घटती गुणवत्ता के दौर में सर गणेश दत्त कितने प्रासंगिक हैं खासकर तब, जब आज की भारतीय राजनीति जनता के कठघरे में खड़ी है और उसके नेता व्यक्तिगत स्वार्थ, नस्ल, जाति–प्रजाति, भाषाई, सांप्रदायिक तथा क्षेत्रीय प्रतिबद्धताओं से संबंधित आग्रहों से ग्रस्त हो देश को खण्ड–खण्ड करने पर आमादा हैं तथा देश की श्रेष्ठतम प्रतिभाओं को अपने पास फटकने नहीं देते। दरअसल, नेताओं की प्राथमिकता में देश आता ही नहीं, उन्हें तो बस कुर्सी और सत्ता दिखती है।

भारतीय राजनीति में भी एक समय वह था जब शिक्षा के प्रति समर्पित नेता सर गणेश दत्त जी में त्याग, निष्ठा, आम–जन के दुःख–दर्द और पीड़ा को महसूस करने की समझ थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वतंत्र भारत में शिक्षा का स्तर गिरता गया और आज भी गिरता ही जा रहा है। आज की शिक्षा को दूषित करने और इसे पंगु बनाने में राजनेताओं का हाथ अधिक है जबकि सर गणेश दत्त सरीखे राजनेता – शिक्षा को व्यक्ति, समाज और देश के संतुलित विकास के लिए साधन मानते रहे। उनका मानना था कि शिक्षा ही मनुष्य को अन्य प्राणी से भिन्न कर उसमें ज्ञान का आलोक भरती है, नैतिकता का समावेश करती है और उसे सभ्य तथा सुसंस्कृत बनाती है। इसलिए कहा जाता है – 'नास्ति विद्या समम् चक्षुः विद्ययाऽमृतमश्नुते।'

किसी भी देश को प्रगतिशील धारा में शामिल होने के लिए वहाँ की शिक्षा अहम् भूमिका निभाती है। इसी को मद्देनजर रखते हुए सर गणेश दत्त जी ने शिक्षा पर जोर दिया। यहाँ तक कि पटना में गंगा के किनारे स्थित अपने निवास को शिक्षा के लिए पटना विश्वविद्यालय के अधीन कर दिया, जहाँ आज शोध–संस्थान अवस्थित है। यह इस बात की परिचायक है कि वे अपने से अधिक दूसरों की चिंता करते थे, किंतु आज परस्पर विश्वास, श्रद्धा, व्यक्ति–व्यक्ति तथा समुदाय–समुदाय के बीच परस्पर सौहार्द एवं एक–दूसरे की चिंता का अभाव दिखता है। यह इस बात का सूचक है कि सहिष्णुता, न्याय और नैतिकता तथा त्याग का जो सुपरिचित मार्ग सर गणेश दत्त सरीखे स्वतंत्रता–संग्राम के सेनानियों–नेताओं, मनीषियों, चिंतकों व विचारकों ने दिखाया था, उसे आज के अधिकांश नेताओं तथा सत्ता पर विराजमान कर्णधारों ने तिलांजलि दे दी है। दूसरी ओर अमीर–गरीब के बीच बढ़ती खाई और जातिभेद के कारण इन दबावों को कम करने की प्रक्रिया में एक आत्मकेंद्रित समाज (Self-Centred Society) उभरकर आया है। यह समाज केवल अपना संकीर्ण स्वार्थ, अपनी प्रगति तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं की परवाह करता है। यह अपवाद नहीं, नियम बन गया है, जिसके भारी बोझ से सामान्य नागरिक दबे जा रहे हैं। सर गणेश दत्त ने महसूस किया था कि हमने जनता के मन में दूसरों की चिंता करने वाली जीवन–पद्धति में विश्वास न जगाया, तो समाज व राष्ट्र बर्बादी के कगार पर चला जाएगा। इसे उन्होंने अपने जीवन में अपनाकर लोगों को रास्ता दिखाया जिसका आज के नेताओं में सर्वथा अभाव है, इस पर आज विचार करना जरूरी है।

जयति–जयति–हे दीप!

❑ मदन मोहन श्रीवास्तव

जलते आया उच्च शिखर पर, सदियों से यह दीप!
जलता सदा रहेगा घर–घर, जन–जीवन का दीप!!
आये कितने अंधड़ पानी, नहीं डिगा यह दीप!
आई कितनी बाधाएँ, पर, ज्वलित रहा यह दीप!!
युग–युग से जलते आया, पुरखों का पावन दीप!
नव प्रकाश फैलाता आया, मंगलमय यह दीप!!
दुश्मन को ललकार रहा है, भारत का यह दीप!
बुझ न सकेगी अमर ज्योति, यह चिर–यौवन का दीप!!
हम बाती बन सदा रहेंगे, बीच तुम्हारे, दीप!
रक्त हमारा रौगन होगा, जयति–जयति, हे दीप!!

◗ ओ.–56 (विस्तार), गीता एन्कलेव वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली–59

जोड़

❑ शशी बुद्धिराजा

जमा के साथ घटा बनाई / सृष्टि के साथ संहार।
आंधी के साथ तूफान / गर्मी के साथ सर्दी।।
राधा के संग वल्लभ / प्रियतम के संग प्यार जुड़ा।
प्यास के साथ जुड़ा है पानी / मन के संग जुड़ा है तन।।
रोटी संग जुड़ी है रोजी / मेहनत संग मजदूरी।
मीन के साथ जुड़ा है जल / नर के साथ जुड़ी है नारी।।

◗ बी–26, नया गोविन्दपुरा, दिल्ली–110051

प्रेस और भारतीय राष्ट्रवाद (1857–1947)

❑ सुबोध कुमार

समाचार पत्र हमारे दिन–प्रतिदिन के जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं। प्रेस केवल जनता के विभिन्न विषयों, राजनीति से लेकर मनोरंजन के उपलब्ध साधनों की सूचना ही नहीं देता वरन्, यह जनता की भावनाओं को एक स्वरूप देने, उसे प्रभावित करने तथा उसके विचारों को प्रतिबिंबित करने का कार्य भी करता है। वह सरकार के उपर अंकुश भी रखता है। अपने लेखों, विचारों, संपादकीयों तथा पाठकों द्वारा लिखे गए संपादक के नाम पत्रों के माध्यम से सरकार को जनता की भावनाओं एवं विचारों से अवगत कराता है। जनता के हाथों में प्रेस एक महत्वपूर्ण तथा दुर्जेय शस्त्र है और विचारों को तेजी से बड़ी संख्या में फैलाने का प्रभावकारी माध्यम भी। समाचार पत्र आधुनिक युग के एक शक्तिशाली सामाजिक संस्थान हैं। यह इससे भी सिद्ध होता है कि इसे लोकतंत्र का चौथा खंभा कहा गया है। वस्तुतः प्रेस अपने समकालीन समाज व जीवन की हरेक धड़कन को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है।

भारत में समाचार पत्र की स्थापना :

भारत में छापे की मशीन की शुरूआत यहाँ के लोगों के जीवन में क्रांतिकारी महत्व की घटना थी। आधुनिक भारती प्रेस का प्रारंभ 1766 ई. में विलियम बोल्ट्स द्वारा एक समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ, परंतु ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनको इंगलैंड भेज दिया। 1780 में जे.के. हिक्की ने 'बंगाल गजट' नामक समाचार पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया था। हिक्की को कंपनी के आलोचना करने के अपराध में सजा भुगतनी पड़ी थी। हिक्की के प्रेस को कंपनी ने जब्त कर लिया और इस प्रकार से 'बंगाल गजट' का अंत हो गया।

18वीं शताब्दी के अंत तक बंगाल में 'कलकत्ता कैरियर', 'एशियाटिक मिरर' तथा 'ओरियंटल स्टार', 'बंबई गजट' तथा 'हेराल्ड' और 'मद्रास कैरियर', 'मद्रास गजट' आदि समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे।

किसी भी भारतीय द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित समाचार पत्र, गंगाधर भट्टाचार्य का साप्ताहिक 'बंगाल गजट' (1816) था। मार्शमैन के नेतृत्व में 1818 के अप्रैल में 'दिग्दर्शन' नामक मासिक पत्रिका बांग्ला में निकली। इसी वर्ष से काशीसेन के संपादन में 'समाचार दर्पण' का निकलना आरंभ हुआ जो 'दिग्दर्शन' मासिक पत्रिका से अधिक समय तक प्रकाशित होता रहा। 1818 में ब्रिटिश व्यापारियों ने जेम्स सिल्क बकिंघम नामक पत्रकार की सेवा प्राप्त की। बकिंघम ने बड़ी योग्यता से 'कलकत्ता जर्नल' का संपादन करके लार्ड हेस्टिंग्स तथा जोन एडम्स को अत्यधिक परेशानी तथा उलझन में डाल दिया। बकिंघम का पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। बकिंघम ने ही प्रेस को जनता का प्रतिबिंब बनाया। उन्होंने प्रेस को आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने, जाँच–पड़ताल करके समाचार देने तथा नेतृत्व करने की ओर प्रवृत्त किया। परंतु जहाँ एक ओर बकिंघम पत्रकारों के लिए आदर्श बन गए वहीं दूसरी ओर कंपनी की आँखों में वे काँटों की तरह खटकने लगे। अतः कंपनी ने उन्हें 1823 में इंगलैंड वापस भेज दिया।

1821 में 'संवाद कौमुदी' के प्रकाशन से तथा 1822 में फारसी में प्रकाशित 'मिरातुल अखबार' के साथ प्रगतिशील राष्ट्रीय प्रवृत्ति के समाचार पत्रों का प्रारंभ हुआ। इन पत्रों के संस्थापक राजा राममोहन राय थे। इन्हीं को एक राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। इन समाचार पत्रों के माध्यम से उन्होंने समाज सुधार का प्रचार तो किया ही साथ ही इनको धार्मिक तथा दार्शनिक समस्याओं पर विचार तथा विवाद का माध्यम बना दिया। अंग्रेजी में राजा राममोहन राय ने 'ब्राहिनिकल मैगजीन' भी निकालना शुरू किया। 1822 में बंबई से गुजराती भाषा में 'दैनिक बंबई समाचार' निकलने लगा। 'बगदत्त' (बांग्ला) की स्थापना 1830 में हुई। द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर तथा राजा राममोहन राय के प्रयास से ही इस पत्र की स्थापना संभव हुई थी। बंबई से गुजराती में 1831 में 'जामे जमशेद' का और 1851 में 'रस्त गोफ्तार' तथा 'अखबारे सौदागर' का प्रकाशन आरंभ हुआ।

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रेस की विशेषताएँ :

इस काल में साधारण जनता भी राजनीति में रुचि नहीं लेती थी। इस काल के समाचार पत्र आलोचना करते तो थे परंतु बहुत ही कम। विभिन्न भारतीय भाषाओं में एवं फारसी में प्रकाशित पत्रों में अंग्रेजी न्यायालयों में प्रचलित अन्याय, धर्म में हस्तक्षेप तथा प्रजातीय भेदभाव की आलोचना हुआ थी, किंतु राजनीतिक विषयों पर चर्चा कम ही होती थी। फिर भी इसका अपना महत्व था। भारतीय जनमत इन विषयों पर कम से कम जागृत तो हुआ।

1857 के बाद के समाचार पत्रों की विशेषताएँ :

1857 के विद्रोह के समय से समाचार पत्रों को प्रजातीय आधार पर विभाजित किया जा सकता है। भारत में दो प्रकार के प्रेस थे। ऐंग्लो इंडियन प्रेस विशेषाधिकार प्राप्त प्रेस था। ऐंग्लो इंडियन प्रेस अपनी प्रवृत्ति और आकार में विदेशी था। वह न तो भारतीयों का प्रतिनिधित्व करता था और न ही उनकी आकांक्षाओं, शिकायतों और राजनीतिक विषयों पर उनके दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था।

भारतीयों के समाचार पत्र अंग्रेजी और विभिन्न भाषाओं में

प्रकाशित होते थे। देश के अधिकांश नेता प्रेस से जुड़े हुए थे। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में भारतीय द्वारा संचालित तथा संपादित पत्रों की संख्या में उल्लेखनीय प्रगति हुई। विभिन्न मनीषी राजा राममोहन राय, सुरेंद्र नाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, कृष्ण कुमार मित्र, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, घोष बंधु, जोगेंद्रनाथ बोस, कृष्ण कमल भट्टाचार्य, अरविंद घोष, बाल गंगाधर तिलक, एन.सी. केलकर, फिरोजशाह मेहता, एम.जी. राणाडे, गंगा प्रसाद वर्मा, राजा रामपाल सिंह, सुब्रह्मन्यम भारती, एस.एन. परांजपे, लाला लाजपत राय, पंचकौड़ी बनर्जी, मुहम्मद अली, जाफर अली खाँ, मौलाना आजाद, सी.वाई. चिंतामणि, रामानंद चटर्जी, जी.ए. नटेशन, कस्तूरी रंगा आयंगर, जी. सुब्रह्मन्यम आयंगर, सच्चिदानंद सिन्हा, बिपिन चंद्रपाल, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी आदि ने भारतीय प्रेस को शक्तिशाली एवं प्रभावकारी बनाया। इनके द्वारा निकाले गए समाचार पत्रों ने जनमत को बनाने, सँवारने, तीव्र करने और प्रभावकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अंग्रेजों द्वारा संपादित पत्र

19वीं शताब्दी के दूसरे चरण में अंग्रेजों द्वारा संपादित प्रमुख पत्रों में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' 1861 से, 'स्टेट्समैन' 1875 से, 'इंगलिशमैन' कलकत्ता से, 'मद्रास मेल' मद्रास से, 'पायनियर' 1865 से इलाहाबाद से और 1876 से 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' लाहौर से प्रकाशित होने लगे थे। इनमें 'इंगलिश मैन' सबसे अधिक रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी था। 'स्टेट्समैन' उदार विचारों के लिए प्रसिद्ध था, परंतु 'पायनियर' सरकार समर्थक तथा भारतीयों का आलोचक था।

विभिन्न समाचार पत्र विभिन्न हितों तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे। उदाहरणस्वरूप 'मद्रास मेल' यूरोपीय वाणिज्य, भूस्वामी तथा महाजनों का प्रतिनिधित्व करता था। लाहौर का 'सिविल एंड मिलिट्री गजट' ब्रिटिश दकियानूसी विचारों का समर्थक था।

भारतीयों द्वारा प्रकाशित एवं संपादित पत्र

1858 में ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा 'सोमप्रकाश' का प्रकाशन बांग्ला साप्ताहिक के रूप में आरंभ हुआ था। कुछ ही वर्षों में सोमप्रकाश एक अत्यंत लोकप्रिय और महत्वपूर्ण समाचार पत्र बन गया। बंगाल में नील आंदोलन के समय इसने किसानों के हितों का जोरदार समर्थन किया।

यही एक समाचार पत्र था जिसके विरुद्ध लिटन का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू किया गया था। कुछ वर्षों बाद हिंदू पैट्रिअट को भी विद्यासागर ने ले लिया। इसका संपादन क्रिस्टोपाल दास कर रहे थे। 1861 में देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा मदनमोहन घोष ने 'इंडियन मिरर' का प्रकाशन शुरू किया। इसी प्रकार से 19वीं शताब्दी के सातवें दशक में केशवचंद्र सेन द्वारा प्रकाशित 'सुलभ समाचार' बांग्ला का महत्वपूर्ण दैनिक पत्र था। आरंभ में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में 'अमृत बाजार पत्रिका' का प्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। 1868 में मोतीलाल घोष ने इसे एक अंग्रेजी बांग्ला साप्ताहिक के रूप में शुरू किया था। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए रातोंरात यह अंग्रेजी में प्रकाशित होने लगा। 'बंगवासी' जोगेन्द्रनाथ बोस ने 1881 में शुरू किया था। 1879 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने अंग्रेजी के बांग्ला पत्र को खरीद लिया तथा इसे एक महत्वपूर्ण पत्र बनाने में वह सफल रहा। यह राजनीतिक विचारधारा का प्रभावशाली प्रदर्शन करता था। 1878 में छोटू लाल मिश्र और दुर्गा प्रसाद मिश्रा ने 'भारत मित्र' प्रारंभ किया। 1907 में रामानंद चटर्जी ने 'मार्डन रिव्यू' आरंभ किया। कालकांकड़ से हिंदी में 'हिंदोस्तान' का प्रकाशन शुरू हुआ। 1861 में 'प्रजा हितैषी' आगरा से तथा 'प्रजाहित' मासिक पत्र इटावा से प्रकाशित होने लगे थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 1867 में भारतेंदु के संपादन में बनारस से 'कविवचन सुधा' प्रकाशित होने लगी। यह 19वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण पत्रिका थी। इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ अधिकांशतः राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों पर होती थी। 1872 में भारतेंदु की मासिक पत्रिका 'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका में देशप्रेम और समाज सुधार के भाव अभिव्यक्त होते थे। 1877 में इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' प्रकाशित हुआ। यह पत्र राष्ट्रीय विचारों का पोषक, स्वाधीन विचारों का समर्थक तथा अपने समय के श्रेष्ठ पत्रों में था।

1881 में बंबई में अंग्रेजी भाषा में 'मराठी' और मराठी में 'केसरी' का प्रकाशन आरंभ हुआ। तिलक के हाथों में 'मराठा' तथा 'केसरी' राष्ट्रीय भावना एवं उग्र राष्ट्रवाद को फैलाने तथा जनता तक उनके विचारों को पहुँचाने के महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी साधन बन गए थे। तिलक के लेखों का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब इन लेखों के कारण तिलक को सजा हुई तो जनता में इसके विरुद्ध व्यापक प्रतिक्रिया हुई। बड़े स्तर पर बंद और हड़ताल हुए।

इसके अलावे 1862 में 'हिंदू प्रकाश' का प्रकाशन एम.जी. राणाडे के संपादन में आरंभ हुआ था और 1864 में बी.एन. मांडलिक ने 'नेटिव ओपनियन' शुरू किया। नरम दल के विचारों को फैलाने के उद्देश्य से 'बॉम्बे क्रानिकल' का प्रकाशन फिरोजशाह मेहता ने 1913 में प्रारंभ किया। बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद को फैलाने का काम अरविंद घोष और वारीन्द्र घोष ने 'युगांतर' तथा 'वंदे मातरम्' पत्र के माध्यम से किया। मद्रास से 1878 में अंग्रेजी में 'हिंदू' एक साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होने लगा। जी. सुब्रह्मन्यम के अधीन तमिल में प्रकाशित 'स्वदेश मित्रम्' एक महत्वपूर्ण पत्र सिद्ध हुआ। 1900 में जी.ए. नटेशन ने 'इंडियन रिव्यू' का प्रकाशन आरंभ किया। एनी बेसेंट ने 'न्यू इंडिया' के माध्यम से होमरूल का नारा जनता में जोर–शोर से पहुँचाया।

महात्मा गाँधी केवल कुशल एवं प्रभावशाली राष्ट्रीय नेता ही नहीं थे, वरन् प्रभावशाली पत्रकार भी थे। 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों का प्रचार किया, सरकार को अपने विचारों एवं राजनीतिक कार्यक्रमों से अवगत कराया तथा भारत की आम जनता को एक बड़े आंदोलन के लिए जाग्रत किया।

मोतीलाल नेहरू ने 1919 में 'इंडिपेंडेंस' का प्रकाशन शुरू किया। हिंदी पत्र 'आज' की स्थापना शिवप्रसाद गुप्त ने की। 1922 में अंग्रेजी दैनिक 'हिंदुस्तान टाइम्स' का प्रकाशन के.एम. पन्निकर के संपादन में प्रारंभ हुआ। अकाली–सिख आंदोलन के परिणामस्वरूप इस पत्र की स्थापना हुई। बाद में अकालियों ने इसे पंडित मदन मोहन मालवीय के हाथों बेच दिया। 1927 में इस पत्र को जी.डी. बिड़ला ने अपने हाथों में ले लिया।

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में देश में समाजवादी–साम्यवादी विचार फैलने शुरू हो गए थे। अंग्रेजी में साप्ताहिक 'न्यू स्पार्क' का प्रकाशन शुरू हुआ। यह पत्र मार्क्सवाद का प्रचार कर रहा था। मजदूरों, किसानों तक नौजवानों के बीच समाजवादी और साम्यवादी विचारों के विकसित होने तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के परिणामस्वरूप 'कांग्रेस सोशलिस्ट' का प्रकाशन आरंभ हुआ। एम.एन. राय ने अंग्रेजी साप्ताहिक 'इंडिपेंडेंट इंडिया' का प्रकाशन शुरू किया। 1930 में एस. सदानंद के संपादन में 'दी फ्री प्रेस जनरल' का प्रकाशन आरंभ हुआ।

1910–20 के मध्य उर्दू पत्रकारिता के क्षेत्र में भी विकास हुआ। 1912 में 'अलहिलाल' तथा 1913 में 'अल बिलाग' कलकत्ता से निकलना आरंभ हुआ। इसके प्रकाशन में मौलाना अबुल कलाम आजाद का हाथ था। मोहम्मद अली ने अंग्रेजी में 'कामरेड' तथा उर्दू में 'हमदर्द' का प्रकाशन आरंभ किया। हमीद–अल–अंसारी ने बिजनौर से 'मदीना' तथा लखनऊ से 'हमदम' अब्दुल बारी साहेब ने प्रकाशित किया। 1910 में 'प्रताप' का प्रकाशन गणेश शंकर विद्यार्थी के संपादकत्व में हुआ। यह उग्र राष्ट्रीयता का पोषक और देशी रियासतों की जनता तथा किसान मजदूर का समर्थक था। 1913 में 'गदर' पत्र का प्रकाशन सैन फ्रांसिस्को से आरंभ हुआ। यह असांप्रदायिक, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक भावनाओं से ओत–प्रोत समाचार पत्र था। जनवरी 1914 में पंजाबी में भी इसका प्रकाशन आरंभ हुआ। अनियमित रूप से इसका प्रकाशन हिंदी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती में भी हुआ।

इसके साथ–साथ प्रेस के विकास के कारण उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बांग्ला में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर, असमिया में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपभुणकर, तमिल में सुब्रहमण्यम भारती, हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

प्रेस के विरुद्ध प्रतिबंध

भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास में समाचार पत्र कारगर हथियार का काम कर रहे थे। अंग्रेजी सरकार को कई प्रेस एक्ट बनाने पड़े, इसी से यह सिद्ध होता है कि समाचार पत्र राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा कर रहे थे। जिस अनुपात में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ, उसी अनुपात में भारतीय समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर आघात हुआ।

ब्रिटिश सरकार द्वारा समाचार–पत्रों के विरुद्ध पास किए गए विभिन्न अधिनियम :–

प्रक्षेपण अधिनियम (1799) – लार्ड वेलेजली ने प्रेस नियंत्रण अधिनियम द्वारा सभी समाचार पत्रों पर नियंत्रण (सेंसर) लगा दिया था। इसके द्वारा समाचार पत्र के संपादक मुद्रक तथा सवामी का नाम स्पष्ट रूप से प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया था। 1807 में इस अधिनियम के तहत पत्रिकाएँ पुस्तकें तथा पैम्फलेट भी आ गए थे।

अनुज्ञप्ति नियम, 1823 – प्रतिक्रियावादी गवर्नर जनरल जोन एडम्स ने 1823 में इन नियमों को आरोपित किया। इस नियम के अनुसार बिना अनुज्ञप्ति लिए प्रेस की स्थापना या उसका उपयोग दंडनीय अपराध माना गया। यद्यपि 1835 में चार्ल्स मेटकॉफ ने 1823 के अनुज्ञप्ति नियमों को रद्द कर दिया।

अनुज्ञप्ति अधिनियम 1857 – 1857 के विद्रोह से उत्पन्न हुई परिस्थिति से निपटने के लिए अनुज्ञप्ति व्यवस्था पुनः लागू कर दी गयी।

पंजीकरण अधिनियम 1867 – इसके तहत किसी भी मुद्रित सामग्री पर मुद्रक, प्रकाशक तथा मुद्रण स्थान के नाम का उल्लेख करना अनिवार्य हो गया। इसके अतिरिक्त प्रकाशन के एक माह के अंदर पुस्तक की एक निःशुल्क प्रति स्थानीय सरकार को देना आवश्यक था।

भारतीय दंड सहिता 124ए – इसके तहत किसी भी व्यक्ति को जो भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लोगों में असंतोष उत्पन्न कर रहा हो या उन्हें सरकार के विरुद्ध भड़का रहा हो, गिरफ्तार कर सरकार तीन वर्ष के लिए कारावास में डाल सकती थी या देश से निर्वासित कर सकती थी।

देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम 1878 – भाषायी समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर सबसे गहरा कुठाराघात था।

भारतीय समाचार पत्र अधिनियम 1908 – इस अधिनियम का उद्देश्य उग्रवादी राष्ट्रवादी गतिविधियों पर अंकुश लगाना था। इस अधिनियम के अधीन ऐसे किसी भी समाचार के प्रकाशन के परिणामस्वरूप, जिसमें हिंसा अथवा हत्या को प्रेरणा मिले, मुद्रणालय को तथा उसकी संपत्ति को जब्त किया जा सकता था।

समाचार पत्र अधिनियम 1910 – इसके तहत समाचार पत्र के प्रकाशक से कम से कम 500 रु. तक अधिक से अधिक 2000 रुपये की पंजीकरण जमानत लेने का स्थानीय सरकार को अधिकार था। पंजीकरण के साथ–साथ जमानत रद्द की जा सकती थी।

समाचार पत्रों से संबंधित कानूनों की समीक्षा के उद्देश्य से 1921 में प्रेस कमिटि की नियुक्ति की गयी जिसके अध्यक्ष सर तेज बहादुर सप्रू थे। इस कमिटि के सिफारिश के आधार पर 1908 तक 1910 के प्रेस से संबंधित नियमों को रद्द कर दिया गया।

इसके अतिरिक्त 1931 और 1932 के अधिनियम के द्वारा प्रेस की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित किया गया। इन सारे प्रतिबंधों का उद्देश्य उभर रही राष्ट्रवादी भावना को दबाना था।

प्रेम की भूमिका एवं प्रभाव

राष्ट्रीय भावना के उदय एवं विकास में तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक पहलू के विषय में–चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक, सांस्कृतिक हो या राजनीतिक – प्रेस की भूमिका उल्लेखनीय रही। जनता के बीच प्रेस की रचनात्मक भूमिका को समझते हुए उसे राष्ट्र का एक अभिन्न अंग बना लिया गया था। प्रेस ने सभी ज्वलंत समस्याओं को प्रभावशाली रूप से प्रकाशित किया। विदेशी सत्ता से त्रस्त जनता को सन्मार्ग दिखाने, साम्राज्यवाद के विरोध में निर्भीक स्वर उठाने का कार्य सरल नहीं था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले समाचार पत्र देश में लोकमत के प्रतिनिधित्व को अपना बहुमूल्य समय देकर, समाचार पत्रों के माध्यम से सरकार की नीतियों की आलोचना कर तथा विभिन्न विषयों पर लेख लिखकर देशवासियों को सरकार के विभिन्न कार्यों तथा समकालीन स्थिति से अवगत करा रहे थे। देशभक्तों ने अपने लाभ या व्यावसायिक दृष्टि से पत्रकारिता को नहीं अपनाया था।

राजनीतिक शिक्षा – भारतीय समाचार पत्रों ने लोगों की राजनीतिक शिक्षा का दायित्व अपने उपर ले लिया था। विभिन्न राष्ट्रीय दलों ने लोगों के बीच विभिन्न राजनीतिक कार्यक्रमों और संघर्ष–पद्धतियों आदि को जनप्रिय बनाने के लिए प्रेस को हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया। प्रेस के बिना राष्ट्रीय संगठनों के ऑल इंडिया कांफ्रेंस की तैयारी संभव नहीं हो पाती और न बड़े राजनीतिक आंदोलन ही संगठित हो पाते। उदाहरणार्थ, 1930–32 के जन आंदोलन के समय कांग्रेसी और कांग्रेस समर्थक लोग गाँधी के अनुदेशों की जानकारी के लिए 'यंग इंडिया' पढ़ते थे।

आर्थिक शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार करना

अँग्रेजों द्वारा भारत का जो आर्थिक शोषण हो रहा था उसके विरुद्ध प्रेस ने आवाज उठायी। 27 नवंबर, 1902 के 'एडवोकेट' में व्यक्त मत कुछ इस प्रकार थे– "भारत की समस्या रुपये आने, पाई से संबंधित है तथा यह (समस्या) राजनीतिक न होकर आर्थिक, शिक्षा से संबंधित थी न कि नैतिकता से और धर्म से। यह मुख्यतः कृषि तथा उद्योग से संबंधित थी।" इस पत्र के अनुसार भारत की जनता की गरीबी ही भारत की आर्थिक समस्या थी जो विदेशी लोगों की हवस तथा नीति के परिणामस्वरूप पैदा हुई थी। भारत से धन के निष्कासन को रोकने का आवाह्न किया गया।

गर्मियों में संपूर्ण राजधानी के शिमला चले जाने और इस प्रकार से दो राजधानियों के खर्चे तथा भारत की आर्थिक व्यवस्था पर पड़े उसके प्रभावों का विश्लेषण और स्वदेशी का प्रचार–प्रेस के द्वारा किया जाता था। स्वदेशी तथा बॉयकाट अखिल भारतीय चर्चा के विषय बन गए थे। उस काल के प्रभावकारी समाचार पत्र 'पैसा अखबार' का मत था कि 'स्वदेशी हिंदुओं से अधिक मुसलमानों के लए लाभप्रद होगा।' अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने अपने लेखों के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक दोहन और यहां से धन के निष्कर्सन के प्रति जनता को जागरूक बना रहे थे।

समाज सुधार – प्रेस, विभिन्न सामाजिक समस्याओं के विषय पर पर्याप्त चर्चा किया करता था। जाति, बाल–विवाह, विधवा–विवाह तक वे सामाजिक, न्यायिक और अन्य प्रकार की सामाजिक असमानताओं के खिलाफ प्रेस ने आवाज बुलंद की। प्रेस के माध्यम से ही समाज सुधारकों ने इन कुरीतियों को हटाने के सर्वोत्तम उपायों पर लगातार विचार–विमर्श किया। नव चेतना का लाभ उठाकर अंग्रेजी साप्ताहिक 'इंडिया सोशल रिफॉर्मर' के माध्यम से समाज–सुधार का प्रचार किया गया।

विदेश नीति पर चर्चा – प्रेस के माध्यम से भारत की जनता को दुनिया में होने वाली घटनाओं की भी खबर मिलती रही। सरकार की विदेश नीति पर भी प्रेस में पर्याप्त चर्चा होती थी। वर्मा युद्ध, सरकार की सिक्किम तथा तिब्बत के प्रति नीति, अफगानिस्तान के साथ युद्ध, तुर्की के प्रति नीति, दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं (बोअर युद्ध) पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सरकार की आलोचना स्पष्ट शब्दों में की जाती थी। 1904–05 के रूसी–जापानी युद्ध ने एक एशियाई देश (जापान) की जो रूस की तुलना में अत्यंत छोटा था, रूस जैसे विशाल एवं शक्तिशाली राज्य के विरुद्ध युद्ध में विजय ने भारतीय प्रेस तथा जनता को नया जीवन एवं आशा दी। यूरोपीय देशों को भी पराजित किया जा सकता था, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया

था। समाचार पत्रों ने भारतवासियों को जापान से शिक्षा लेने की सलाह दी।

निष्कर्ष

बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन के हर चरण को, उसके प्रत्येक पहलू एवं राजनीतिक गतिविधियों को प्रेस ने प्रमुखता दी। राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय बनाने, उसके प्रत्येक रूप को विकसित करने, जनता को लोकतांत्रिक संस्थाओं से अवगत कराने, जनमत के निर्माण तथा विभिन्न दलों के विचारों से भारतवासियों को परिचित कराने, देश के विभिन्न भागों से सामाजिक वर्गों के बीच व्यापक विचारों का आदान–प्रदान कराने, प्रादेशिक लोगों के मध्य एक मानसिक संबंध स्थापित कराने, राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलनों (राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि) को सफल बनाने, प्रादेशिक संस्कृतियों तथा साहित्य का विकास करने, विभिन्न कुरीतियों को दूर करने, जनतांत्रिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों से लोगों को अवगत कराने, संसार में होने वाली घटनाओं से भारतवासियों को परिचित कराने और जनता के विचारों से सरकार को अवगत कराने का महत्वपूर्ण एवं कठिन कार्य, उस काल के प्रेस ने अत्यंत कुशलता तथा सफलता से पूरा किया था। कानून के संकुचित दायरे और सरकारी दमन के बावजूद इसने अभिव्यक्ति के नए–नए मार्ग ढूँढकर लोगों में राजनीतिक चेतना फैलाई और अन्याय से लड़ने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रेस हमारे राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्र निर्माण की प्रकिया का भारी स्तंभ बन गया।

◗ **एलआईसी कालोनी, बहादुरपुर, भागलपुर, बिहार**

चुगने की आदत

❑ **अशोक सिंघई**

जीवन में बहुत कुछ मिला / छिटका भी कुछ न कुछ। आज भी जब खाता हूँ अधरात / चने, मुरमुरे, दालमोठ, सिके चीना–बादाम, अंगूर आदि / छिटक जाता है कुछ न कुछ वह भी बिस्तर पर / मैं बीन–बीन कर / मुँह में रखता रहता हूँ / एक–एक दाना।

उसने कहा / चिड़ियों की तरह चुगने की आदत / कुछ ठीक नहीं लगती / बिस्तर, फर्श पर गिरा दाना / उठाकर टप से रख लेते हो मुँह में / अच्छा हुआ / थाली में ठीक से जाता है खाना / और ये सब ऊल–जलूल / भकोसते हो आधी रात / वह तो मैं हूँ / जो झेलती हूँ तुम्हारी ये आदत।

कहा मैंने / मैं रचना का निरादर नहीं कर सकता।

मेरी दार्शनिकता के आचार–व्यवहार से / त्रस्त कहा उसने माउण्ट आबू के आश्रम में / इस तरह परमात्मा की भक्ति को भी / चुन लेना कभी।

नहीं, वह तो है या नहीं / इस पर तो / मतदान पूरा नहीं हुआ है अभी / मैं तो जो हैं / जो बोते और भूनते हैं चना / उगाते हैं अंगूर / तलते हैं दाल–मोठ आदि / उनकी रचना की महानता से ही / भाराक्रांत हूँ।

चने में दिखती है मुझे धरती / और दिखते हैं सारे खेत वे / महसूसता हूँ भाड़ की तपिश / और सुनता हूँ हवाओं की गुनगुनाहट / अंगूर में थिरकती है नदी / इनके लोभ और मोह से छूट नहीं पाता / पूरी की लालच में / कभी आधी नहीं गँवाता / इतनी अक्ल तो रच दी है / गुरुओं ने मेरे।

और रचना / मैं चुन–चुन के चुगता हूँ।

◗ **उप महाप्रबंधक**
भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि., भिलाई, म.प्र.

भोर उषा का प्यार मिला

❑ **डॉ. सुभाष शर्मा 'समदर्शी'**

नव रस गागर जीवन में, भोर उषा का प्यार मिला।
रवि की रश्मियाँ बिखरीं, नियति को नया संसार मिला।।
निशा के नयनों से देखा, उन्हें ममता मयंक झलकी
अधरों को जब फड़काया मैंने, पायल पहने वो निकली
दिवस का अवसान हुआ, संध्या को रूप शृंगार मिला।
नव रस......
दले दिन भर पवन मगन, गगन अगन बरसाये,
नित नया साल सबेरे, नियति चुनरिया लहराये
मन भाये उनके लहरों पे, सुबह शबनम का हार मिला।
नव रस....
मन पंक्षी थककर सो जाता, रजनी के शीतल छाँव में
मन पावन पुलकित हो जाता, नयनाभिराम गाँव में
लोचन खुले ज्योति मिले, नव जीवन का उपहार मिला।
नव रस.....
दे जाती संदेश उषा जीवन में, नई चेतना जगा जाती
करने को कर्म जीवन में सुंदर संदेश सुना जाती
नव जीवन चले मन हारे नहीं, जीवन को रसधार मिले
नव रस गागर जीवन में, भोर उषा का प्यार मिला।

◗ **बी–144, मधु विहार, नई दिल्ली–59**

प्रथम डेट

❑ श्रीमती स्नेह ठाकुर

ड्रेसिंग टेबुल के आगे खड़े हम दोनों अपनी–अपनी प्रथम डेट के लिए श्रृंगार कर रहे थे। अदिति अपने मंगेतर रीतेष के लिए आकांक्षाओं से भरा दिल लिए, कंपकपाते हाथों से अपेक्षाओं को सहेजती हुई और मैं पीयूष के लिए आशंकाओं भरा दिल लिए, थरथराते हाथों से अनिश्चितता का दामन पकड़े। हम दोनों के होंठ यदा–कदा कुछ बुदबुदा देते हैं। एक–दूसरे के आमने–सामने खड़े हो बात करने का साहस दोनों ही नहीं जुटा पा रहे हैं। दर्पण की छवि ही, बिना एक–दूसरे का सामना किए कभी–कभार कुछ बोल देती है।

चेहरे पर पाउडर लगाते हुए अदिति ने ही पूछा–''कौन सी साड़ी पहन रही हो माँ?''

''शायद नीली..... हल्की–सी जरी वाली.....''– ''नहीं–नहीं'' वातावरण में गूँजे शब्द खुद ही को अजीब लगे और बोल पड़ी–''प्रिंटेंड प्योर सिल्क वाली, क्यों ठीक होगी न? और हाँ 'मेक–अप' कैसा है?'' और पूछते ही इस विचार ने कौंधकर अधरों पर थोड़ी–सी मुस्कुराहट छिटका दी कि टीनेजर लड़की से बेहतर सलाह डेट्स के श्रृंगार पर और कौन दे सकता है।

मेरी मुस्कुराहट ने अदिति को भी अछूता न छोड़ा–बोली ''नहीं, नीली जरी वाली माँ, कुछ तो ग्लैमरस होना चाहिए न!'' और उसने मेरे गालों को हल्के से मलकर 'रूज़' को ना के बराबर कर दिया और 'आई–शैडो' को करीब–करीब मिटा ही दिया।

मैंने दर्पण में देखा तो भौंहें अपने आप ही सिकुड़ गईं–''अरे यह तो 'मेकअप' करने से पहले जैसी थी वैसी ही हो गई हूँ!''

''हाँ माँ, यह तुम्हारा असली रूप ही है। आप ही ने तो हमें हरदम यह सिखाया है कि अन्दर का रूप काउन्ट करता है, बाहर का नहीं। इट्स एन इम्पोरटेन्ट डेट, यू डोन्ट वान्ट टु गिव हिम रांग इम्प्रैशन।''

''अरे तुम कब से मेरी बात सुनने लगी हो?''

''रिलैक्स मॉम, यू विल बी फ़ाइन,'' अदिति ने कहते हुए शरारत में कंधे उचका दिए, ''इट्स जस्ट ए डेट....''

अभी तो तुम कह रहीं थी कि ''इटस वेरी इम्पोरटेन्ट डेट, आई शुड बी केयरफुल नॉट टु गिव हिम रांग इम्प्रैशन।''

अदिति भी हँस पड़ी और मेरी हू–बहू नकल करते बोली–''आप कब से मेरी बात सुनने लगीं हैं!''

तनाव थोड़ा–सा कम हो रहा है पर हाथों के कम्पन ने फिर भी बिंदी गिरा ही दी।

अदिति बोली ''माँ थोड़ी देर बैठ जाओ, ना हो तो थोड़ा–सा योगा कर लो।''

''क्या? मैं और योगा? अरे कब देखा है तुमने मुझे योगा करते हुए?''

''हाँ माँ, ''अदिति ने गम्भीरता से कहा ''इट माइट रिलैक्स यू, जूली रोज करती है, कहती है टेन्शन भी नहीं रहता और इससे कम्प्लैक्शन भी अच्छा होता है।''

थोड़ा–सा तनाव दूर होने से हल्की सी जो शांति उपजी थी वो जूली के नाम से ही कपूर की तरह उड़ गई। शरीर की हर एक माँसपेशियाँ सूखी लकड़ी की तरह अकड़ गई, मुँह का स्वाद न चाहते हुए भी कड़वा गया। अपने को शांत रखने की बड़ी कोशिशों के बावजूद भी आवाज़ में 'सरकाज़्म' उभर पड़ा–''हाँ जूली को ही योगा की ज्यादा जरूरत है, तुम्हारे पिता के साथ रहने के लिए लिए जूली को ही योगा से उत्पन्न शांति की जरूरत है। मैं तो अपने हिस्टीरिया के साथ ही सबसे ज्यादा 'कम्फरटेबल' हूँ, मुझे तो यही आता है।''

''आई एम सॉरी मम्मी'' अदिति ने जल्दी से मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा ''पता नहीं क्यों मैंने उसका नाम ले लिया, इटस स्टूपिड ऑफ मी, प्लीज़, आई एम सॉरी।''

अपनी बड़ी कोशिशों के बावजूद कि चेहरे पर 'इनडिफरेन्स' अवज्ञा का मास्क चढ़ा लूँ, चेहरा अपना 'डिस्कम्फर्ट' न छुपा पा रहा था, होंठ वक्र होकर थरथरा रहे थे, गले की नसें बैठने का नाम नहीं ले रही थीं, अवांछित आँसुओं को रोकने की कोशिश में आँखे फड़फड़ाए जा रहीं थीं, सब कुछ धुँधला पड़ रहा था।

दूर से आती अदिति की आवाज़ ने ''रियली मम्मी, आई डोन्ट नो ह्वाई आई ब्रॉट हर अप!''–

''शायद मैं भी रीतेष के साथ अपनी प्रथम डेट की वज़ह से नर्वस हूँ''– मुझे सचेत किया। अपने पर ही कोफ़्त हुई कि क्यों ऐसा होता है? ''फॉर गॉड सेक अब तो साल हो गया है।''

किसी तरह अपने को सँभालती हुई बर्फीली मुस्कान के साथ बोली, ''इटस ऑल राइट बेटा, शी इज़ योर फ़ादर्स वाइफ़'' और जोर से अपने होठों को दबा अगला वाक्य निकलने से रोक पाई ''ईवन शी इज़ यंग एनफ टु बी योर सिस्टर''।

बेटी की आँखों में झलकी ममता और दया का मिश्रण न झेल सकी। शीशे की ओर मुँह फेर आँखों के नीचे की लाइन मिटाने लगी। मिटाते–मिटाते थक गई–पर वो न मिटी और तब आभास हुआ कि यह मिटाने वाली लाइन नहीं, यह तो विषाद के उन थपेड़ों की निशानी है जो अब उम्र भर अंकित

रहेगी।

"मम्मी–मम्मी– आप ठीक तो हैं न?" अदिति की आवाज़ कानों से टकराई और न चाहते हुए भी बोल पड़ी– "हाँ ठीक ही तो हूँ, बयालीस साल की हो गई हूँ, पति बाइस साल का साथ मेरे से आधी उम्र की लड़की के लिए छोड़ गए हैं। ठीक ही तो है, उसकी तो उम्र ही नहीं वज़न भी शायद मेरे से आधा होगा!! तीन सिज़ेरियन बच्चों के बाद माँसपेशियाँ कसाव के दायरे में आने का नाम नहीं लेना चाहतीं, जवानी दामन छिटक दूर खड़ी हो गई है। शादी से पहले कभी डेट नहीं की और शादी के बाद तो डेट का प्रश्न ही नहीं उठता, तुम्हारे पिता ही सब कुछ थे। आज जिन्दगी में पहली बार डेट पर जा रही हूँ। वो आदमी जो कुछ ही मिनटों में मेरा द्वार खटखटाएगा, समझ नहीं आता कि उससे क्या कहूँगी? कैसे बिहेव करूँगी?"

"मम्मी याद करो! आपने हमें क्या शिक्षा दी है" अदिति माँ को उसके इस मूड से निकालने का प्रयत्न करती हुई बोली।

थोड़ी सी निधि की मुस्कुराहट वापिस आई– "यही कि ज्यादा चपड़–चपड़ न करना......"

"मम्मी!!"

"पगली मैं तो मजाक कर रही थी"

"मम्मी प्लीज, आज कोई मजाक नहीं, ठीक है न? आज आप सिर्फ़ आप ही रहें" और उसने वो ढ़ेर सारे उपदेश जो कभी मैंने उसे दिए थे और उसके पहले मेरी माँ ने मुझे दिए थे, दे डाले,; और फिर नटखटी मुस्कुराहट से बोली–"यदि आप ज्यादा नर्वस हों तो बोलिएगा मत, चुपचाप सुनती रहिएगा। पुरुषों को अच्छा लगता है जब कोई उन्हें सुनता रहे, अपने को महत्वपूर्ण समझने लगते हैं।" कहते हुए अदिति अपने बाल बनाने लगी।

उसकी पीठ होते ही मैं फिर आशंकाओं के अँधेरे कुएँ में गिरती चली गई। अपनी आवाज़ उसी अँधेरे कुएँ से आती लगी कि यह कैसी विवशता है! अनिल ने तो मुझे अपने जीवन से झाड़–बुहार कर कचड़े की तरह बाहर फेंक दिया और मैं सारी कटुताओं के साथ उसे अपने में समाए बैठी हूँ। यद्यपि क्रोधित हूँ पर क्रोध से कहीं ज्यादा विरह भावना से पीड़ित हूँ। बिरह और क्रोध में गहरा अन्तर है– एक कविता है दूसरा जंगल की आग। संबंध टूट जाते हैं पर सन्दर्भ बने रहते हैं और आदमी तड़पता रहता है। किसी भी तरह आँचल झटककर दूर नहीं हो पा रही हूँ।

अदिति मेरी और मुड़ी और एक बार जो मेरे बोलने का प्रवाह चालू हो गया था वो अबाध गति से बहने लगा–"हाँ अदिति, हालाँकि शादी के दूसरे साल से ही अनिल विश्वासघात करने लगे थे और मैं अपने को ही दोषी माने उनके अनुरूप ढ़लने का निरन्तर प्रयास करती रही।"

"लोग कहते हैं आदमी का प्यार उसकी जिह्वा में समा जाता है अतः मैंने उनकी पसन्द की खाने की चीज़ों में निपुणता हासिल की।"

"हर तरह से, हर कोण से अपने को बदला, पर कहीं कोई अन्तर न पड़ा।"

"मेरी तो अनिल ने चारदीवारी पे लगी बेल की तरह उसमें से जब जी चाहा फूल नोंच बाकी समय अवहेलना ही की है। मेरे सन्दर्भ में रिश्ते के हाथों माँग में चुटकी–भर सिन्दूर भर सिन्दूरी अस्तित्व से काँटेदार फेन्सिंग लगा दी– यह लड़की वर्जित क्षेत्र है, इस सरहद के बाहर निकल इसे जीने का कोई हक नहीं है! पर मैं स्वयं इसकी इस सीमा रेखा से बाध्य नहीं हूँ, जब चाहूँ जहाँ चाहूँ निरकुंश जा सकता हूँ।"

"उनका अलमस्त, फक्कड़ स्वभाव, उनकी फ्लर्टनेस जो शादी के प्रथम वर्ष गुदगुदा जाती थी और जिसे मैं निधि की निधि समझे बैठी थी वही मेरी सौतन बन बैठी और उस निधि पर डाका डालने, उसे हड़पने कई जूलियाँ आईं और गईं।"

"आदमी स्वभावगत ही रहता है। बदल के भी आदमी बदलता नहीं है चाहे वह कितना ही पढ़ा–लिखा सभ्यता के शिखर पर पहुंचा हुआ हो। काफी समय बाद यह अक्ल आई। कई सालों तक कुछ तथ्य हठी बालक की तरह भेजे में घुसने से साफ इंकार करते रहे, अन्त में यह तथ्य स्वीकारना ही पड़ा कि शायद प्रकृति की तरह आदमी की जिन्दगी भी अपने साँचे को बदल नहीं पाती है। अभी भी 'शायद' की सम्भावना मुँह बाए बीच में खड़ी ही थी। कोशिशों, नए प्रयोग प्रयास सब कुछ जब एक 'एक्सपेरीमेन्टल' चलचित्र की तरह पर्दे पर उभर कर वहीं खत्म हो गए तब जाना शोषण और शोषित का सिलसिला अनन्त था, उसके नए सिरे खड़े हो जाते थे, नित नए संबंध, ताल्लुक़ उभर आते थे।"

"हर अफ़ेयर धीरे–धीरे दिल को नम व जड़ करता गया। और फिर तीन बच्चों के साथ जाती भी तो कहाँ जाती? सच पूछो तो जाना भी नहीं चाहती थी कहीं। अनिल के साथ कुछ इस तरह जुड़ी थी कि सब यातनाओं के बावजूद भी उसे जीवन का नासूर समझ काट न सकी।"

"अनिल ने मुझे उस पुरानी किश्ती की तरह बेदिली से समुद्र किनारे फेंक दिया जो उनके अनुसार खुले समुद्र में तैरने के काबिल न थी। अतः उसे समुद्र के किनारे रेत पर उतार कर बेदिली से फेंकना मानो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। ये कश्तियाँ जीर्ण–शीर्ण हो रेत के घरौंदे की तरह हो जाती हैं जो हवा के एक ही झोंके से टूट–फूट कर बिखर जाती हैं।"

अदिति ने सात्वना भरे अपने हाथों से मेरे हाथों को सहलाया,

लगा बच्ची इस माहौल में रह अपनी उम्र से बड़ी हो गई है, अनायास मुँह से निकल पड़ा--''बेटा, ऐसा नहीं कि मैं तुम बच्चों के चेहरे पे आए भावों को पढ़ नहीं पाती। मैं जानती हूँ कि तुम्हें अपने पिता पर रोष है। रोष क्या मुझे कम नहीं? पर स्नेह तन्तु तोड़ने में अपने को असमर्थ पाती हूँ, इसीलिए तुम लोगों के चेहरे पर झलकी मेरी कमजोरी के प्रति अधैर्यता चुपचाप सहन कर जाती हूँ। ये कैसा रिश्ता है! और फिर यह रिश्ता है ही कहाँ! किस रिश्ते से जुड़ी बैठी हूँ! रिश्ते का अर्थ है नैकट्य–नहीं तो.....''

''मित्रों और शुभचिन्तकों ने कई बार समझाया कि मैं अपनी ज़िन्दगी की बागडोर सँभालू पर सँभालती तो कैसे? आत्मप्रताड़ना से फुरसत मिले तब न!!'

''और फिर जब उम्र की धूप का साया जिन्दगी की मुँडेर से ढ़ल गया तो मेरे अन्दर बहुत–सी इन्तज़ार भरी शामें यों ठहर गईं जैसे डाँट–फटकार और दहशत से बच्चे की आँख में आँसू ठहर जाता है। संधियों–से भरी दुनिया छोड़ने का साहस न कर सकी।''

''उम्र बढ़ी है, देह की गठन में शिथिलता उभरने लगी है, किन्तु मन जहाँ पतंग की तरह कट के वृक्ष पर अटक गया था आज भी वहीं अटका है। इसीलिए नए सपने आते नहीं हैं और पुराने–भयावने सपने बार–बार दस्तक देते हैं, यहाँ तक कि अतीत की उन थोड़ी–सी बची–खुची कोमल भावनाओं को भी चील कौओं की तरह नोच–नोच कर खा जाते हैं। कैसी त्रिशंकु की स्थिति में लटकी हूँ!''

''ऐसा नहीं कि उम्मीदें जब–तब दिल में करवटें नहीं लेती रहीं। दिल! ये दिल भी क्या चीज़ है! आदमी की मुट्ठी भर के आकार का लोथड़ा ही न जो रगों में बहते खून को रात–दिन पम्प करता रहता है? यही है न वह दिल जिसमें उम्मीदें किसी न किसी शक्ल–सूरत में, किसी न किसी नाड़ी में करवटें बदलती कही जाती हैं? पर आत्मग्लानि, रोष, कड़वाहट से भरे मेरे दिल में किसी ओर भावना के लिए कोई जगह ही नहीं बची थी। ज़िन्दगी का हर पहलू इनसे भरा हुआ था कि एक सुबह आँख खुली और पाया इस दरमियान धीरे–धीरे मैंने सब मित्रों को दूर खिसका दिया और तुम लोगों के चेहरे पर भी लुकी–छिपी मरे प्रति अधैर्यता दिन–ब–दिन ज्यादा उजागर होने लगी और तब लगा मेरा यह रोष, मेरी यह प्रताड़ना सिर्फ मुझे ही खाकर संतुष्ट नहीं; मेरे परिवार की ओर भी मुँह बाए खड़ी है। उस दिन मैं यह जान गई कि अब मुझे इस दलदल से निकलना ही पड़ेगा। और उसी दिन से शुरू हो गया था आत्मसम्मान को पाने का अनन्त सफर।''

''जिस दिन पहली बार नौकरी पर गई थी, आत्मविश्वास फिर डगमगा गया था पर तुम लोगों के मेरे प्रति उल्लासित चेहरे देख, डगमगाते कदमों को सहारा मिला था।''

''अदिति, यहीं पर ऑफिस में पीयूष से मुलाकात हुई। तुम्हारे पिता से बिल्कुल अलग व्यक्तित्व–शांत, गम्भीर, अल्प–भाषी, पर अपनी लगन के पक्के। दो बार मना करने पर भी आज शाम की डिनर–डेट के लिए पूछ बैठे।''

''अब तुम्हीं बताओ उम्र के इस दौर में कैसे परियों के देश में पहुँच जाऊँ? कहाँ से वो उत्साह लाऊँ जो कब का मुझे छोड़ चुका है? न........ अब मुझमें और निराशाओं को झेलने की शक्ति नहीं रही। मैं न जा पाऊँगी। यह प्रथम डेट शुरू होने से पहले ही समाप्त हो जाये तो बेहतर है।''

मैं अपना मुँह छिपाते हुए मुड़ने ही वाली थी कि अदिति की दर्पण से झाँकती दो बेबस आँखें मेरे पैरों में बेड़ी डाल गईं और मैं वैसे ही, वहीं जकड़ी खड़ी रह गई।

अदिति की आँखें मुझे बरबस खींचे जा रही थीं। भावनाओं के ज्वार–भाटे पर किसी तरह अंकुश लगाकर आवाज़ को सामान्य बनाते हुए नए संकल्प के साथ बोली–''नीली हल्की ज़री वाली साड़ी ही ठीक रहेगी, कुछ तो ग्लैमरस भी होना ही चाहिए न!!''

क्षणांश में अदिति मेरी बाहों में झूल रही थी। आँखें तरल हो उठीं, ममत्व उतर आया उनमें। खोए हुए दिन तो नहीं लौट सकते पर ज़िन्दगी की खुशी में शायद कुछ क्षण ब्याज रूप में मिलने की उम्मीद हो गई हो। दुनिया ही उम्मीद पर टिकी है। आदमी उम्मीद पर ही जीता है। आशा की बैसाखी लिए ही दुर्गम से दुर्गम पथ पार कर जाता है।

मैंने प्यार से अदिति के माथे को चूमा और उसके बालों को सहलाते हुए अचानक मेरी नज़र दर्पण पर पड़ी जहाँ दर्पण से झाँकती अपनी आँखों को देख मैं चौंक पड़ी, उनमे प्रथम डेट का भय नहीं था वरन् थी आशा की किरण। बाहर लाल गुलाबों की दहकन साँझ के धुँघलके में काँटों को अपनी हरीतिमा में छुपा सिर्फ़ और सिर्फ़ अपनी तपिश, अपनी मादक सुगन्ध वातावरण में लहरा रही थी। फूलों की लाली से निकला एक गहरा नशा हवा में फैल मदहोश किए जा रहा था।

सम्पादिका–वसुधा (त्रैमासिक)

16 रेवलिस क्रेस., स्कारबोरो, ओन्टारिया,

एम.आई.वी. 1 ई.9, कनाडा

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस का शताब्दी वर्ष

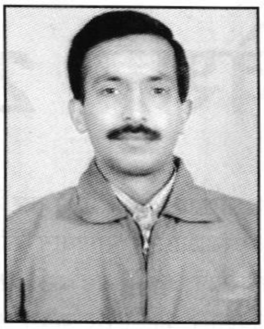

❑ श्रीमती नेहा कुमारी एवं श्री उपेन्द्र नाथ

इस वर्ष 8 मार्च को विश्व में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस का शताब्दी वर्ष मनाया जाएगा। इस अवसर पर अपने देश भारत में महिलाओं की दशा एवं दिशा पर विश्व के परिदृश्य में एवं सरकारी प्रयासो को मद्देनजर रखते हुए मंथन करना नितांत प्रासंगिक है।

भारत में महिलाओं की संख्या देश की कुल जनसंख्या (लगभग1.2अरब) की लगभग आधी है तथा लगभग सात सौ दस मिलियन मतदाताओं में महिला मतदाता की संख्या लगभग 340 मिलियन है। विश्व आर्थिक मंच की वैश्विक लैंगिक अंतराल संबंधी नवीनतम रिपोर्ट, 2009 में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के आधार पर 134 देशो में भारत 24 वें स्थान पर है। पिछले वर्ष हुए लोक सभा के आम चुनाव में 556 महिला उम्मीदवारो में से रिकार्ड 58 महिलाओं ने जीत हासिल की जबकि 1999 में 284 एवं 2004 में 355 महिलाएँ लोक सभा चुनाव में उम्मीदवार थीं।

अब महिला कल्याण के क्षेत्र में सरकार द्वारा किए गए एवं जा रहे कार्यो के बारे में थोडी चर्चा कर लें। मौजूद सं.प्र.ग. सरकार ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान है और कमजोर वर्गो के लिए शुरु किए गए एक स्कीम के अंतर्गत इनके पुत्रियों की शादी के समय इन्हें आर्थिक सहायता देने का प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन नामक स्कीमों के अंतर्गत हाशिए के समुदायों के माँ एवं नवजात शिशु के स्वास्थ्य के मुद्दों को प्राथमिकता दी जाती है। जननी सुरक्षा योजना के अंतर्गत सरकारी अस्पतालों में प्रसव कराने के लिए माताओं को आर्थिक सहायता सहित प्रोत्साहन दिया जाता है। महिला स्व सहायता समूहों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है और ऐसी स्कीमों के लिए समग्र निधि को बढाकर 500 करोड़ रुपये किया गया है। सरकार का लक्ष्य अगले 3 वर्षो में महिला निरक्षरता दर को घटाकर 50 प्रतिशत करने का है तथा ऐसी स्कीम लाने का भी विचार है जिसके अंतर्गत कोई भी मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम करने वाले गरीब विधार्थियों को ब्याज राजसहायता (सब्सिडी) दी जाएगी। विज्ञान में करियर बनाने की ओर और ज्यादा प्रतिभाशाली युवा महिलाओं को आकर्षित करने की कोशिश सरकार ने की है और इसके लिए कांसोलिडेशन ऑफ यूनिवर्सिटी रिसर्च, इनोवेशन एंड एक्सिलेस (सी.यू.आर.आई.ई) नामक महिला विश्वविधालयों की नयी स्कीम शुरु करने के लिए सरकार द्वारा कदम उठाए जा रहे हैं।

पर, महिला कल्याण के मोर्च पर की जा रही उपर्युक्त कोशिशें पर्याप्त तो नहीं ही कही जा सकतीं। दूसरे शब्दों में कहें तो अभी भी बहुत कुछ किया जाना नितांत आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र विकास निधि (यू.एन.डी.एफ.) का मानना है कि महिलाओं को पुरुषों के बराबर अवसर दिए बगैर विश्व को बेहतर नहीं बनाया जा सकता। इस निकाय ने इस दिशा में कई कदम उठाए भी हैं। पिछली जनवरी में 150 देशों के निर्वाचित प्रमुखों में से 8 महिलाएँ थीं। विश्व के देशों में उपलब्ध मंत्री पदों का महज 16 प्रतिशत महिलाओं के पास है। विश्व की कुल जनसंख्या में महिलाओं की संख्या लगभग आधी है पर विश्व के कुल धन के महज एक प्रतिशत धन का स्वामित्व महिलाओं के पास है। यह महिलाओं की आर्थिक हैसियत की दारुण स्थिति नहीं तो और क्या है? और तो और विश्व की लगभग 75 प्रतिशत महिलाएँ स्थायी रोजगार नहीं होने के कारण बैंको से कर्ज नहीं ले सकतीं। इस दिशा में तुर्कमेनिस्तान की महिलाओं ने अनुकरणीय सराहनीय पहल की है जिसके अंतर्गत वे यू.एन.डी.पी. के साथ साझेदारी के माध्यम से अपने शिल्प कौशल से धन अर्जित कर उन्नतिशील उधोग स्थापित करने की जी–तोड कोशिश में लगी हैं।

भारत के संदर्भ में गौरतलब बात यह है कि महिलाओं से जुडे प्रश्न विश्वसनीय भारतीय अस्मिता की खोज से हमेशा ही संबद्ध रहे हैं। लेकिन बिडंबना है कि यह महिलाओं की आईकन वाली स्थिति से हमेशा ही जुदा रही है। पर मशहूर महिला कार्यकर्ता श्रीमती बृंदा करात का दृष्टिकोण इस संबंध में बेहद आशावादी है। उनका मानना है कि मौजूदा लोकसभा और राज्य सभा में युवा सांसदों में महिलाओं के अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता है और उनकी सोच भी स्पष्ट है। इसलिए उन्हें आशा है कि अगले पाँच वर्षो में इन युवा सांसदों और संगठनों के बीच बेहतर समन्वय रहेगा जिससे इस दिशा में ठोस उपलब्धि हासिल की जा सकेगी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज वक्त का तक़ाज़ा है कि महिलाओं की समग्र स्थिति को बेहतर किया जाये, न कि महिलाओं के जीवन के महज एक या दो क्षेत्रों में बेहतरी हासिल कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली जाय। इसे अमली जामा पहनाने के लिए न केवल भारत बल्कि विश्व के सभी देशों को अपनी योजनाओं को हकीकत में बदलना होगा तथा महिलाओं की ओर केन्द्रित कार्यक्रमों और परियोजनाओं को समुचित रुप से लागू करने के साथ–साथ नए दृष्टिकोण से युद्व स्तर पर इसके लिए जुट जाना होगा।

◗ बी–173, मधु विहार, उत्तम नगर, न.दि.–59

राष्ट्रीय विचार मंच का तीसरा वार्षिक अधिवेशन 2009

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच (और इसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि') के तत्वावधान में तीसरा राष्ट्रीय अधिवेशन विगत 28 एवं 29 नवम्बर 2009 को नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में सम्पन्न हुआ। यह अधिवेशन 'स्वस्थ्य समाज एवं सबल राष्ट्र' पर केन्द्रित था जिसके चार अकादमिक सत्रों में देश के निम्नांकित ज्वलंत मुद्दों पर विद्वान प्रतिनिधियों ने विचारों का आदान–प्रदान किया –

1. आर्थिक विषमता और उसका समाधान 2. भावी पीढ़ी के लिए भयमुक्त समाज का निर्माण 3. बढ़ते भौतिकवाद और सिमटते रिश्ते 4. पर्यावरण – प्रदूषण के बढ़ते खतरे। इन चार तकनीकी सत्रों के अतिरिक्त उद्घाटन एवं समापन सत्रों सहित एक अखिल भारतीय सर्वभाषा कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया।

अधिवेशन का उद्घाटन जाने–माने विधिवेता एवं केन्द्रिय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष न्यायमूर्ति जी. एस. बाली ने किया। बाली जी ने कहा कि राष्ट्रीय विचार मंच राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में अमूल्य योगदान कर रहा है। उन्होंने आश्वासन दिया कि मंच के इस अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान में वे भी हर कदम पर साथ देगें। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं डी. डी. ए. के वित्त सदस्य श्री नन्दलाल ने की। नंदलाल जी ने कहा कि भावात्मक एकता भारत की आत्मा है और भारत की संस्कृति हृदय की धड़कन है। आज विभिन्न कारणों से हमारे अखण्ड राष्ट्र की अखण्डता पर खतरे मँडरा रहे हैं। इन खतरों का मुकाबला करने के लिए हर भारतवासी में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने की परम् आवश्यकता है और मंच एवं इसका मुख–पत्र इसी दिशा में सतत् कर्मरत है। इसके पूर्व मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा 'विचार दृष्टि' के सम्पादक सिद्धेश्वर जी ने मंच का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के क्रम में अधिवेशन के उद्धेश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं उसमें हर तरफ एक असंतुलन, उहापोह और उथल–पुथल सी मची हुई है। देश के सामने गरीबी, आर्थिक विषमता, जातिवाद, आतंकवाद, नक्सलवाद आदि अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं। हमारे रिश्ते–नाते और संबंध विकट व्यावसायिकता के जाल में उलझकर रह गए हैं। मंच, देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने के लिए पिछले कई वर्षो से वैचारिक पहल करता आ रहा है। लोकतंत्र के पहरूए के रूप में काम कर मंच के सदस्य, समाज व देश की समस्याओं का समाधान खोजने की ओर सतत अग्रसर हैं जिसका साक्षी यह अधिवेशन है। मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष नंदलाल जी ने हर कदम पर मंच के हम पदाधिकारियों एवं सदस्यों का मार्गदर्शन किया है और विचार दृष्टि को पठनीय एवं संग्रहनीय बनाने में सराहनीय भूमिका अदा की है।

उद्घाटन समारोह के बाद हुए 'आर्थिक विषमता और उसका समाधान' नामक पहले तकनीकी सत्र का विषय प्रवर्तन करते हुए मंच के सदस्य प्रो. पी. के. झा 'प्रेम' ने कहा कि सामाजिक प्रतिबधता पर जोर दिया जाना चाहिए, राजनीतिक एवं सामाजिक तथा भाषायी विषमता दूर होनी चाहिए। इसके लिए उन्होंने वैचारिक क्रांति पर जोर दिया और कहा कि ऐसी पहल पहले घर से ही शुरू होनी चाहिए। विचारक डा. मेदनी प्रसाद राय ने कहा कि हिन्दुस्तान में फैली सामाजिक बुराइयों को खत्म किया जाना चाहिए। मनोज जी ने कहा कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि कार्य में उन्नति, प्रबंधन और पंचायती व्यवस्था में सुधार द्वारा ही आर्थिक विषमता दूर हो सकती है। आचार्य ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार ने कहा कि आज सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय जैसे सिद्धांत को व्यवहार में उतारे जाने, बाजारीकरण की सोच को बदले जाने और नैतिक आस्थाओं पर बल दिए जाने की आवश्यकता है। केरल विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. एन. सुरेश ने कहा कि आज आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन का सम्यक वितरण किया जाय। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के आचार्य अरूण भगत ने सामाजिक विषमता का मुख्य कारण धन के असमान वितरण को बताते हुए कहा कि किसान, श्रमिक, मजदूर, ट्रेडर आदि सभी के धनोपार्जन में भारी अन्तर है। इसमें सुधार की परम् आवश्यकता है। श्रीमती लक्ष्मी आर्या ने गरीब–अमीर के बीच अंतर को दूर करना अनिवार्य बताया। कवि एवं संस्कृत के आचार्य अलख नारायण झा जी का कहना था कि पैसे और पद की प्रतिष्ठा एक साथ नहीं चलेगी और हमें आचार संहिता पर जोर देना ही होगा। सत्र की अध्यक्षता करते हुए रचनाकार डा. हरि सिंह पाल ने कहा कि लोग गाँधी जी को भूल गए हैं। उच्च्य विचार और सादा जीवन मूल–मंत्र होना चाहिए, पंचायत की व्यवस्था सुदृढ़ की जानी चाहिए, समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना पर जोर

दिया जाना चाहिए और इन सबके मूल में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज में वैचारिक क्रांति होनी चाहिए जिसके बिना आर्थिक विषमता पर लगाम नही कसी जा सकती है। सत्र के अन्त में धन्यवाद ज्ञापित करते हुए प्रो. मनोज कुमार ने कहा कि हमें आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि भारत का जनमत बदलेगा, हमें प्रतिबद्धता के साथ कार्य करना होगा। साथ ही समय–समय पर स्वस्थ वैचारिक क्रांति द्वारा हम समाज से आर्थिक विषमता दूर करने में निःसंदेह सक्षम होंगे।

अधिवेशन के 'भावी पीढ़ी के लिए भयमुक्त समाज का निर्माण' नामक दूसरे तकनीकी सत्र के प्रारंभ में मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष नंदलाल जी ने कहा कि यह सत्र सामाजिक सरोकार पर आधारित है। ताकत हम सब में है। बस, एकजुट होकर काम करने की आवश्यकता है। इतिहास में क्रांति सोच से आई है। सभी क्रांतियाँ दिमाग की उपज हैं। हमें अपनी सोच को निष्ठापूर्वक समाज में फैलाना है। सोच हमारी सबसे बड़ी ताकत है। विषय–प्रवर्तन करते हुए अरूण भगत ने कहा कि भयमुक्त समाज का नारा राजनैतिक पार्टियों द्वारा दिया गया पर यह निरूद्देश्य गया। इसका कारण है– सामाजिक और धार्मिक असहिष्णुता। न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका और मिडिया सभी भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार हैं। डा. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार ने कहा कि भ्रष्टाचार का राजनैतिक स्तर पर महिमामंडन नहीं होना चाहिए। डा. ओमकार कटियार ने कहा कि राष्ट्र महत्वपूर्ण है व्यक्ति नहीं। केरल विश्वविद्यालय के एम. फिल. (हिन्दी) के छात्र पुष्कर लाल ने अस्पृश्यता की समस्या पर प्रकाश डाला और कहा कि सामाजिक सम्मान पर ध्यान दिया जाना चाहिए। डा. हरि सिंह पाल ने संगोष्ठी के अभिनव प्रयोग पर बधाई दी। उन्होंने ग्रामीण संस्कृति में असमानता दूर करने और लोक कथा की समानता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि यदि राष्ट्र को बदलना है तो पहले हमें बदलना होगा। डा. हीरा लाल बछोतिया ने कहा कि भय के दो रूप – आंतरिक और बाह्य हैं। लेखकों को भी भयमुक्त साहित्य का सृजन करना चाहिए। मेदनी प्रसाद राय ने कहा कि जब समाज मजबूत होता है तो राज्य भी मजबूत होता है। आज हमारे बच्चों में सपने पैदा करने की आवश्यकता है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए डा. भार्गव ने निम्नलिखित सुझाव दिए – शिक्षा प्रणाली में समानता लाई जाय, बच्चों के मन से किताबों का भय निकालने की कोशिश की जाय, बच्चों में सपने देखने की स्वछंदता के विकास के लिए माहौल बनाया जाय, पर्यावरण–प्रदूषण की तरह प्रशासनिक प्रदूषण पर बात की जानी चाहिए, लोगों के सहयोग से फल की चिंता किए बिना कार्य करते जाना चाहिए। धन्यवाद–ज्ञापन करते हुए नंदलाल जी ने कहा कि शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए, रोजगार के साधन उत्पन्न करने पर बल दिया जाना चाहिए, हमें अपने कर्त्तव्यों के पालन पर विशेष ध्यान देना चाहिए, केवल अपने अधिकारों पर बल देने से ही सामाजिक समस्याएँ हल नहीं होंगी।

अधिवेशन के 'बढ़ते भौतिकवाद और सिमटते रिश्ते' नामक तीसरे तकनीकी सत्र का विषय–प्रवर्तन करते हुए बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष एवं विचार दृष्टि के सम्पादक सिद्धेश्वर जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि हम विचार करें कि क्या बुजुर्ग आज सम्मानित महसूस कर रहे हैं ? उन्होंने युवा पीढ़ी से आग्रह किया कि वे बुजुर्गों को गोद लेने का शुभारंभ करें। आज माता–पिता को चाहिए कि वे बेवजह अपनी संतानों के मामलों में दखल देना छोड़ें और नई पीढ़ी को एक हद तक स्वतंत्रता जरूर दें। तमिलनाडु से आए कुलभूषण जी ने कहा कि भौतिकवाद युवाओं की बुद्धिमानी नहीं है और यह न ही उनकी कमी है। आज अधिकारों का क्षरण हो रहा है। आज घोड़े के समान दौड़ने वाले युवाओं पर बुद्धिमतापूर्ण अंकुश रखने की आवश्यकता है। गाँधीवादी विचारक डा. विजय जी ने कहा कि "दिल मिले न मिले हाथ मिलाते रहिए, देश रहे न रहे दुनिया हिलाते रहिए"। उन्होंने इंसानियत कायम रखने और आर्थिक संरचना के विकास पर बल दिया। आचार्य रामविलास मेहता ने नैतिक शिक्षा पर बल दिया। मनोज कुमार ने कहा कि नैतिक मूल्य कायम रखना आवश्यक है। सिमटते रिश्तों के लिए परिवार ही जिम्मेदार है। विचार दृष्टि के प्रबंध संपादक सुधीर रंजन जी ने कहा कि जो अपेक्षा हम अपने माता–पिता से कर रहे हैं वही अपेक्षा बेटा भी हमसे कर सकता है। अतः अपेक्षाओं में सामंजस्य स्थापित होना बेहद जरूरी है। देहरादून से आए राजकिशोर सक्सेना ने पारिवारिक प्रबंधन के सामंजस्य पर बल दिया। कैमरा मैन ललित शर्मा ने सिमटते रिश्तों के लिए समयाभाव, संस्कार की कमी और परिवार को कम समय देने को जिम्मेदार ठहराया। पटना से आए डा. एस. के. सिंह ने कहा कि सभ्यता बढ़ती रहती है, परिवर्तन शाश्वत नियम है, पुरातन और परंपरा के बीच सामंजस्य कायम किया जाना चाहिए। सत्र की अध्यक्षता करते हुए डा. रामनिवास मानव जी ने संतानों को आत्मबल प्रदान करने, पारिवारिक भावनाओं का सम्मान किए जाने, अच्छा संस्कार देने पर बल दिया। धन्यवाद ज्ञापन करते हुए उपेन्द्र नाथ ने कहा कि भौतिकवाद की अति पर संयम रखने, सिमटते रिश्तों के लिए जिम्मेदार कारणों पर पर्याप्त सोच–विचार करने, अपेक्षाओं की अति पर मनन करने, बुजुर्गों का समुचित सम्मान जरूर करने और नैतिक मूल्यों को अपने व्यवहार का अंग बनाने की परम् आवश्यकता है।

अधिवेशन के 'पर्यावरण–प्रदूषण के बढ़ते खतरे' नामक चौथे और अंतिम तकनीकी सत्र में श्री नंदलाल जी ने विषय–प्रवर्तन करते हुए कहा कि अधिक से अधिक वृक्षारोपण करने में आम लोगों को भागीदार बनाने की आवश्यकता है।

तुलसी का पौधा हमेशा ऑक्सीजन देता है। सार्वजनिक स्थल पर धूम्रपान से परहेज किया जाना चाहिए। वन–महोत्सव का आयोजन कर लोगों में वृक्षारोपण के प्रति लगाव और पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न किया जाना जरूरी है। डा. विजय ने कहा कि सामुदायिक समाज को बल मिलना चाहिए। सिद्धेश्वर जी ने पहाड़ों पर बढ़ते प्रदूषण पर चिंता जतायी। उन्होंने लोगों को पर्यावरण के प्रति शिक्षित करने की आवश्यकता पर बल दिया। डा. राजकिशोर सक्सेना ने कहा कि पर्यावरण की क्षति से सभ्यता पर आँच आने की आशंका है। पहाड़ों पर चीड़ के पेड़ नही लगाने चाहिए क्योंकि ये पहाड़ को खोखला कर रहे हैं। बाँस का पेड़ दूरगामी परिणाम देता है। सौर ऊर्जा पर बहुत बल देने की परम आवश्यकता है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. एन. सुरेश ने कहा कि केरल में पर्यावरण के प्रति जागरूकता है और सरकार की ओर से केरल में तुलसीवन के अंतर्गत हर प्रकार के पौधे लगाए जाते हैं। जैव–वैविध्य पर बल दिया जाना चाहिए और स्कूली स्तर पर ही पर्यावरण के प्रति जागरूकता के संबंध में पाठ्यक्रम लागू किया जाना चाहिए। सत्र के अंत में धन्यवाद ज्ञापित करते हुए विचार दृष्टि के सहायक संपादक डा. मणिकान्त ठाकुर ने अधिवेशन में पधारे बुद्धिजीवियों का हार्दिक अभार व्यक्त किया। उन्होंने वैश्विक आर्थिक विषमता, रिश्तों में आई संवेदनशून्यता आदि समस्याओं के अतिरिक्त नष्ट होते वनों पर गहरी चिंता जताते हुए सरकार का ध्यान पर्यावरण–प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाओं की ओर दिलाने के लिए विद्वजनों से गहन चिंतन करने का आग्रह किया। इसी के साथ तकनीकी सत्रों का समापन हुआ।

तकनीकी सत्रों के बाद आयोजित 'समापन समारोह' में बतौर मुख्य अतिथि सांसद श्री महाबल मिश्रा ने कहा कि राष्ट्रीय विचार मंच बहुत ही आवश्यक सामाजिक योगदान करता रहा है और नंदलाल जी के सुयोग्य मार्गदर्शन में मंच आने वाले समय में भी महत्वपूर्ण योगदान करता रहेगा, जिसका पूर्ण विश्वास मुझे है। उन्होंने मंच को भविष्य में हरसंभव सहयोग का वचन दिया। विशिष्ट अतिथि के तौर पर बोलते हुए श्री बंसल जी ने मंच को शुभकामना दी और मंच की गतिविधियों में योगदान करने का आश्वासन दिया। इस अवसर पर श्री महाबल मिश्रा जी के कर कमलों द्वारा मंच के इस अधिवेशन में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले श्री हिमांशु भारद्वाज, श्री गुप्ता जी, श्री पी. के. झा 'प्रेम', श्री उपेन्द्र नाथ, डा. मणिकांत ठाकुर एवं अन्य सहयोगियों को 'विचार–प्रभा सम्मान' से सम्मानित किया गया। श्री सिद्धेश्वर जी ने अधिवेशन में पधारे बुद्धिजीवियों और अधिवेशन को सफल बनाने में योगदान करने वाले व्यक्तियों का हार्दिक अभार व्यक्त किया। अधिवेशन के दूसरे एवं अंतिम दिन समापन समारोह के बाद सर्वभाषा कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रख्यात हास्य कवि सुरेन्द्र शर्मा जी के नेतृत्व में देश के कोने–कोने से आए कवियों ने हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी आदि भाषाओं में अपनी काव्य प्रस्तुति कर उपस्थित अपार जनसमूह को लोट–पोट करने के साथ–साथ कभी–कभी गंभीर चिंतन करने पर भी विवश कर दिया। इस प्रकार अधिवेशन का समापन हुआ।

डॉ. मणिकांत ठाकुर एवं श्री उपेन्द्र नाथ

अनुवाद में सांस्कृतिक आदान–प्रदान

– उपेन्द्र नाथ

अनुवाद : एक अंतःसांस्कृतिक घटना

हर भाषा किसी संस्कृति की वाहक होती है। भाषा ही मानव चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। किसी समाज की संस्कृति वहाँ की भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होती है। इस तरह भाषा और संस्कृति दोनों एक दूसरे से अभिन्न होती हैं। किसी भी संस्कृति के विकास में भाषा के साथ–साथ साहित्य का बड़ा योगदान होता है। साहित्य के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति तो होती ही है, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानकों की स्थापना भी होती है। यह कहना सर्वथा संगत है कि भाषा का संस्कृति के साथ संश्लिष्ट संबंध है क्योंकि भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ संस्कृति का अंग होती है और उसे निरुपित भी करती है। अतः भाषा और साहित्य का विकास संस्कृति के विकास का एक बड़ा कारक होता है।

दो संस्कृतियों के टकराहट के समय भाषा ही दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में सहायक का काम करती है। दो जातियों द्वारा बोली जानेवाली भाषाएँ एक–दूसरे को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि दोनों का ही रूप बदलता है। यह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है जो सभी भाषाओं को कम या ज्यादा प्रभावित करती है। किसी भी भाषा का रूप सदा एक–सा नहीं रहता। दूसरी भाषाओं के प्रभाव से उसमें निरंतर बदलाव आता रहता है। यूरोपीय संस्कृति से भारत के संपर्क होने के फलस्वरूप हिंदी भाषा अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि भाषाओं से प्रभावित हुई और इसमें उन भाषाओं के शब्दों का प्रचलन बढ़ा। भारतीय एवं अरबी संस्कृतियों के टकराव से ऐसा भाषा रूप विकसित हुआ जो आगे चलकर 'उर्दू' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस उर्दू भाषा में फारसी शब्दों की भरमार थी। ऐसा अनुवादों के द्वारा हुआ।

अनुवाद के माध्यम से कथ्य का भाषिक अंतरण या आदान–प्रदान होता है। यह भाषिक आदान–प्रदान केवल एक भाषिक संरचना से दूसरी भाषिक संरचना का न होकर भाषा से जुड़ी संस्कृति का भी होता है। इसीलिए अनुवाद को 'सांस्कृतिक सेतु' की संज्ञा भी प्राप्त हुई है। इसे एक ऐसी तकनीक माना गया है जिसका आविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडंबनाओं से बचने के लिए किया था। जब कोई कथ्य एक भाषा से दूसरी भाषा में जाता है तो उसका भाषांतरण के साथ–साथ सांस्कृतिक अंतरण भी होता है यानि वह अपनी भाषा–संस्कृति से निकलकर एक नई भाषा–संस्कृति में प्रविष्ट होती है। जब कालिदास के नाटक को अंग्रेजी में अनूदित किया जाता है तो वह भारतीय संस्कृति से यूरोप की संस्कृति में अंतरित हो जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भाषा चूँकि संस्कृति का अंतरंग हिस्सा होती है इसलिए अनुवाद तत्वतः एक विशेष प्रकार का कर्म होता है जिसकी व्याख्या अंतर–सांस्कृतिक घटना के रूप में की जा सकती है।

दरअसल अनुवाद भाषाओं का नहीं संस्कृतियों का होता है और यह अंतर्सांस्कृतिक संपर्क स्थापित करने के तरीकों में एक बहुत ही प्रभावी तरीका है। संबद्ध संस्कृतियों के बीच निकटता की मात्रा अर्थात् पारस्परिक समानता पर ही किसी अनुवाद का सरल या कठिन होना निर्भर करता है। जिस संस्कृति की भाषा में अनुवाद किया जा रहा हो, यदि उसमें मूल संस्कृति से संबद्ध किसी वस्तु, अवधारणा, सामाजिक संस्था तथा व्यवहार–पद्धति का अभाव हो तो अनुवादक को लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति के किसी ऐसे साधन को खोजना पड़ेगा जिसके द्वारा मूल पाठ का कथ्य समग्रता में लक्ष्य भाषा के पाठक तक सहज बोधगम्य रूप में पहुँच जाय। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में अनुवादक के लिए दोनों भाषाओं और उनसे संबद्ध संस्कृतियों की कुछ न कुछ जानकारी तो बेहद जरूरी होती है।

भाषा और संस्कृति : अनुवाद की कठिनाई

अभिव्यक्ति के अन्य रूपों की तरह भाषिक अभिव्यक्ति वक्ता या लेखक के मन्तव्य को ही नहीं बल्कि उसकी सांस्कृतिक बनावट को भी व्यक्त करती है। अर्थात् संपूर्ण वाङ्.मय (मौखिक और लिखित) मानव–संस्कृति की भाषिक अभिव्यक्ति है। सतही रूप से देखने पर भ्रम हो सकता है कि वाङ्.मय के दो प्रमुख भेदों – शास्त्र और साहित्य– में से 'शास्त्र' किसी समाज की वैचारिक बनावट और 'काव्य' उसकी संवेदनात्मक बनावट को व्यक्त करता है। अतः सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की गुंजाइश शास्त्र की अपेक्षा साहित्य में अधिक होती है। पर ध्यान से देखने पर यह बात उभरती है कि किसी समाज के वैचारिक इतिहास के पीछे उसके दीर्घकालीन अनुभव, भौतिक संघर्ष और क्रमशः विकसित जीवन प्रणाली की प्रेरणा और योगदान होता है। भारतीय और पश्चिमी परंपराओं की दार्शनिक अवधारणाओं के 'बीज' शब्दों पर ध्यान देने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये शब्द 'अर्थों' के नहीं बल्कि अवधारणाओं यानि 'अर्थ–क्षेत्रों' के वाचक हो गए हैं। ऐसे अर्थ–क्षेत्र जो दीर्घकालीन चिंतन मनन की प्रक्रिया में इनके साथ अभिन्न रूप से जुड़ गए हैं और इन्हें वही समझ और सराह सकता है, जिसका कुछ न कुछ परिचय इनकी सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से हो। यह स्थिति केवल दार्शनिक अवधारणाओं के संबंध में ही नहीं, रीति–रिवाजों, खान–पान, रहन–सहन की वस्तुओं, यहाँ तक

कि साहित्य–शास्त्र के सिद्धांतों और विधाओं के संबंध में भी सही है। इसीलिए ब्रह्म, पैगम्बर, मसीहा, निर्वाण आदि शब्दों का तमाम भाषाओं में लिप्यंतरण करके अपनी भाषा के शब्दों में शामिल कर लिया गया है। कारण, बिल्कुल समानार्थी शब्दों का उन भाषाओं में अभाव है। इसी तरह वस्तुओं, त्यौहारों, रीति–रिवाजों के वाचक शब्द अक्सर एक भाषा से दूसरी भाषा की लिपि में रूपांतरित होकर चले आते हैं। कभी–कभी अनुवाद में उनका लक्ष्यभाषायीकरण कर दिया जाता है और तब ऐसे शब्द अपना व्युत्पत्यर्थ छोड़कर मूल शब्द से जुड़े अर्थ या अवधारणा का बोध कराने लगते हैं। उदाहरण के लिए Tragedy और Comedy के लिए हिंदी में 'त्रासदी' और 'कामदी' जैसे शब्द क्रमशः गढ़ कर प्रचलित कर दिए गए हैं।

शब्द का वस्तुगत, विचारगत, अवधारणागत अर्थ होने के साथ ही उनका सांस्कृतिक संदर्भ भी होता है। फलस्वरूप, अनुवाद की भाषा में समानार्थक या निकट समानार्थक शब्द के अभाव में प्रायः संकट की स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसी कारण से, अनुवाद के सिद्धांतों की चर्चा के प्रसंग में यह माँग बराबर की जाती रही है कि पारिभाषिक शब्दावली का शाब्दिक अनुवाद करने या गढ़ने की कृच्छ–साधना करने के बजाय आयातित, विचार, वस्तु, आविष्कार या अवधारणा के साथ शब्दों का आयात भी कर लिया जाना चाहिए।

अनुवाद की कठिनाइयों व समस्याओं का सर्वेक्षण कई दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। यह बात इस तथ्य पर निर्भर करती है कि अनुवाद का उद्देश्य और उसकी आवश्यकता क्या है। इस विषय में दो विपरीत धारणाएँ हैं। एक तरफ तो यह माना जाता है कि अनुवाद मूल रचना के विकल्प के रूप में सामने आना चाहिए, अनुवाद मूलनिष्ठ होना चाहिए, अर्थ प्रधान अर्थात् शाब्दिक होना चाहिए। दूसरी ओर, यह कहा जाता है कि अनुवाद एक सृजनात्मक क्रिया है। उसका उद्देश्य केवल मूल वृत्ति का अर्थ उद्घाटित करना ही नहीं वरन् मूल रचना द्वारा छोड़े गए प्रभावों को प्रस्तुत करना है। यदि पहली धारणा को मान्यता दी जाय तो यह तथ्य सामने आएगा कि कुछ रचनाएँ ऐसी हो सकती हैं जिसका पूर्णतया सार्थक अर्थात् शाब्दिक अनुवाद हो ही नहीं सकता। अतः ऐसा अनुवाद करने के पहले यह देखना होगा कि रचना अनुवाद करने योग्य है या नहीं। दूसरी धारणा को महत्व देने का परिणाम यह हो सकता है कि हर अनुवादक अपनी मानसिक संरचना और भावनात्मक दृष्टि के अनुसार ही मूल रचना से प्रभावित होगा और अनुवाद पर उसकी कल्पना की विशिष्टता भी अनिवार्यतः प्रभाव डालेगी। इस प्रकार अनुवाद के नाम पर वह जो कुछ प्रस्तुत करेगा आवश्यक नहीं कि वह मूल रचना से निकटता भी रखता हो।

व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो अनुवाद के विषय में उपरोक्त दोनों धारणाओं में से शुद्धतः किसी एक को मान्यता देना संभव नहीं है। अनुवाद में अर्थ और भाव दोनों का ही समन्वय आवश्यक है। सांस्कृतिक अर्थछवियों के अनुवाद में खासतौर पर ऐसा कोई एकांगी नियम लागू नहीं किया जा सकता। ऐसी रचनाओं का अनुवाद करते समय अनुवादक को न केवल दो भाषाओं में वरन् दो संस्कृतियों में प्रवेश करना होता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनुवाद को विज्ञान का दर्जा देकर उसे भाषाशास्त्रीय अध्ययन की उप–शाखा मान लिया गया। उस पर विज्ञान विशेषकर गणित और तर्कशास्त्र का दृष्टिकोण और पद्धति लागू की जाने लगी। भाषाओं को सार्वभौमिक सिद्धांतों से संबद्ध 'कोड' के रूप में देखा जाने लगा। दो भाषाओं के विभिन्न तत्वों पर पारस्परिक संबद्धता का वर्णन, तुलनात्मक पद्धति से समानार्थकता के आधार पर किया गया।

बीसवीं सदी के नवें दशक में विशेष रूप से जर्मनी में जो नयी दृष्टियाँ सिलसिलेवार सामने आयी हैं उनमें भाषायी अंतरण के बजाय सांस्कृतिक संप्रेषण पर बल दिया गया है। उनमें अनुवाद को कूटान्तरण की नहीं संप्रेषण की क्रिया के रूप में देखा गया है। इसी नयी दृष्टि के अनुसार अनुवाद लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ के प्रकार्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। उसका नियमन मूल पाठ के द्वारा नहीं होना चाहिए। अर्थात् अनुवाद भविष्य–प्रभावी कार्य है, पूर्वप्रभावी नहीं है। अनूदित रचना के प्रति यह नई दृष्टि किसी पाठ को भाषा विशेष का अलग और अनोखा नमूना नहीं बल्कि विश्व का अभिन्न अंग मानती है।

इस मत के समर्थक विद्वानों ने बराबर इस धारणा का विरोध किया है कि अनुवाद केवल भाषा संबंधी मसला है। इनके अनुसार यह मूलतः संस्कृति के अंतरण की समस्या है और इसलिए अनुवादक को अनेक नहीं तो कम से कम दो संस्कृतियों की समझ होनी चाहिए। **बरमिअर** ने अनुवाद संबंधी अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है, **''अनुवाद एक भाषा के शब्दों या वाक्यों का दूसरे भाषा में कूटांतर मात्र नहीं है। यह एक जटिल कर्म है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति एक नयी स्थिति और बदली हुई प्रकार्यात्मक, सांस्कृतिक और भाषाई हालातों में पाठ (स्रोतभाषा की सामग्री) के बारे में सूचनाएँ प्रदान करता है। ऐसा करते हुए वह उसकी अभिव्यक्तिगत विशेषताओं को यथासंभव सुरक्षित रखता है।''**

इस स्थापना के सबसे सटीक उदाहरण विज्ञापनों के अनुवाद में दिखाई पड़ते हैं। इस धारणा के अनुसार अनुवाद का स्वतंत्र अस्तित्व होता ही नहीं है। वह अपने निर्धारित प्रकार्य पर निर्भर रहता है। कोई भी पाठ एक स्थिति विशेष में गहराई तक स्थापित होता है। इस स्थिति की नियामक सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है। इसलिए अनुवाद का

स्वरूप लक्ष्य संस्कृति में रोपे गए पाठ के प्रकार्य पर निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए, यदि हिंदी के निम्नलिखित वाक्य का अनुवाद किसी अभारतीय भाषा में करना हो तो अनुवाद का स्वरूप इस बात से तय होगा कि उस भाषा में अनूदित वाक्य का प्रकार्य क्या है : "उसने मंगलसूत्र उतारकर जमीन पर फेंक दिया"। जाहिर है, इस वाक्य के शाब्दिक अनुवाद से किसी विदेशी भाषा में कुछ संप्रेषित नहीं किया जा सकता। न केवल 'मंगलसूत्र' शब्द बल्कि उसे जमीन पर फेंकने की क्रिया के सांस्कृतिक निहितार्थ का जो अनुवाद किया जाएगा उसके स्वरूप का निर्धारण लक्ष्य भाषा में इसके प्रकार्य से होगा।

अनुवाद केवल जानकारी के स्रोत नहीं होते। जब एक भाषा की रचनाएँ अनूदित रूप में दूसरी भाषा के संसार में प्रवेश करती है तो उनके साथ नयी अवधारणाओं, नयी विधाओं, अभिव्यक्ति की नयी भंगिमाओं और मौलिक प्रयोगों की एक पूरी दुनिया स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में आ जाती है। ऐसे अनुवाद एक संस्कृति पर दूसरी संस्कृति के रचनात्मक प्रभाव के वाहक होते हैं।

अनुवादक को जब किसी देश के साहित्य और उसके सांस्कृतिक घटकों को दूसरी भाषा में ले जाना होता है तो उनकी निकटता अथवा दूरस्थता के अनुपात पर ही उनकी भाषिक अभिव्यक्ति की सफलता या असफलता निर्भर करती है। फिर भी चूँकि दो भाषा–भाषी व्यक्ति सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद वार्तालाप, प्रेमालाप, संवाद, मैत्री और कभी–कभी अमैत्री के भी इच्छुक होते हैं इसलिए अनुवाद उनकी इस भावनात्मक तथा बौद्धिक माँग को पूरा करने का एक सशक्त माध्यम बनता है। सच पूछिए तो अनुवादक भाषा बदलकर सांस्कृतिक अर्थ–छवियों तथा परिवेश का व्याख्यात्मक परिचय ही तो देता है। जब स्रोत भाषा से कोई सांस्कृतिक उपादान लक्ष्य भाषा में उपलब्ध नहीं होता तो कुशल अनुवादक विवश होकर उसके कुछ विकल्प निकालता है– जैसे मूल के शब्दों तथा प्रयुक्तियों को स्वीकार कर लेना, उनकी व्याख्या या परिभाषा दे देना, शाब्दिक अनुवाद कर देना, समतुल्य शब्द तलाश करना, नए शब्द गढ़ लेना और कभी–कभी उसे छोड़कर वंचकता कर जाना। परंतु इन सभी कठिनाइयों के बावजूद अनुवादक शताब्दियों से अपना दायित्व निभाता आ रहा है और दो संस्कृतियों के बीच अपरिचित को परिचित बनाने हेतु अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार प्रयास करता रहा है।

<u>संदर्भ :–</u>

1. Newmark, Peter : Approaches to Translation, Pergamon Press, Oxford, 1982.

2. Nida, Eugine A & Taben Charles R : The Theory & Practice of Translation, Leiden, 1967.

3. Telgeri, Pramod & Verma, S. B. (Ed.) : Literature in Translation, Popular Prakashan, Bombay, 1988.

4. Bassnett, Susan & Lefevre, Andre : 'Translation : History & Culture, Printer Publishers, London, Newyork, 1990.

5. गुप्त, अवधेश मोहन : अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत और सिद्धि, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1991.

6. तिवारी, भोलानाथ : अनुवाद विज्ञान, शब्दाकार, 1986.

7. अय्यर, डॉ. एन.ई. विश्वनाथ : अनुवाद कला, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1990.

नगर एवं ग्राम नियोजन संगठन, ई. ब्लॉक, विकास भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली।

सुर कैसे मिलाऊँ

किरण सिन्हा

तीव्रता से बदलते इस संसार के
सुरों से सुर को कैसे मिलाऊँ ?
न कोई लय है, न कोई ताल है
न ही कोई झंकार है।

भाग–दौड़ की इस दुनिया में
स्थिरता का न कोई स्थान है।
अपनों की इस दुनिया में
दिल को दिल से कैसे मिलाऊँ ?
तीव्रता से.......।

भावुकता का कोई नाम नहीं
अपनों की कोई पहचान नहीं
सब करते हैं अपनी मनमानी
कोमल भावनाओं को कैसे जगाऊँ ?
तीव्रता से.......।

रंग वही है, रूप वही है
पर धूप की गर्मी नहीं
पक्षियों का झुंड है पर
कोयल की वो कूक नहीं
मंद होते सरगम पर
सर के साज कैसे बजाऊँ ?
तीव्रता से.......।

वुड स्टोक, जोर्जिया, अमेरिका

उपन्यास और अनुवाद

❑ उपेन्द्र नाथ

उपन्यास : अनुभूति का साहित्य

साहित्य की अन्य सर्जनात्मक विधाओं की भाँति उपन्यास भी मूलतः अनुभूति का साहित्य होता है। उपन्यासकार गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। उपन्यास में लेखक की अनुभूति अधिक मूर्त धरातल पर स्थूल सामाजिक परिवेश में एक या अधिक पात्रों के माध्यम से प्रतिफलित होती है। उपन्यासकार परोक्ष रहकर अपने मनोनुकूल पात्रों के माध्यम से भी अपनी अभिव्यक्ति करता है और प्रत्यक्ष पाठक से संपर्क जोड़कर भी बीच–बीच में कथासूत्रों को अथवा अपने चिंतन–प्रवाह को अग्रसर करता है इसीलिए अनेक पाश्चात्य आलोचकों ने यह तथ्य मुक्तकंठ से स्वीकार किया है कि आज का युग उपन्यास का युग है और आज का जीवन अपनी अनेकमुखी विविधता, जटिलता और विशद्ता में अगर किसी स्रष्टा कलाकार की पकड़ में आ सकता है तो उपन्यासकार की। **एलेन ग्लासगो** का यह वक्तव्य अत्यंत सटीक है कि– **"मेरे मत से मानवीय अनुभव की संपूर्ण व्यापकता और मानव नियति की अपार विस्तृति उपन्यास की परिधि में सिमट आ सकती है।"** पाठक वस्तुतः उपन्यासकार के माध्यम से जीवन के असीमित विस्तार की झलक पा लेता है, वह मानवीय अनुभूतियों के विस्तृत क्षेत्र में सहभागी हो जाता है। उपन्यास के माध्यम से उसे आधुनिक समाजों के क्रियाकलापों जटिलताओं, विषमताओं, राग–द्वेषों, भावनात्मक तनावों और दबावों, सामाजिक–नैतिक --आर्थिक समस्याओं, सुख–शांति तथा अन्तर्बाह्य कलह– अशांति का जितना सशक्त एवं यथार्थ प्रतिबिंब मिल सकता है किसी अन्य माध्यम के द्वारा संभव नहीं।

आधुनिक उपन्यास की सबसे बड़ी विशिष्टता है–उसकी यथार्थपरकता, जीवन के साथ उसका प्रत्यक्ष–सहज जुड़ाव। उपन्यास की धारा वास्तव में दो तटों के बीच में से प्रवाहित होती है – वस्तुपरकता और आत्मपरकता। यों अपने विकास में वह निरंतर आत्मपरकता के तट से दूर और वस्तुपरकता के तट के अधिकाधिक निकट होता चला गया है परंतु बहिरंग और अंतरंग तत्वों, बहिर्मुखी और अंतर्मुखी प्रवृत्तियों के सामंजस्य के बिना उपन्यास की गति नहीं। एकांत अंतर्मुखी वृत्ति कवि के भावन, उसकी संवेदना को गहराई दे सकती है, किंतु उपन्यासकार की परिस्थिति–संयोजना, प्रसंगोद्भावन–शक्ति तथा प्रबंध–कौशल को खंडित भी कर सकती है।

उपन्यास जटिल मानव सभ्यता की देन है। इसके अनेक सूत्रों में व्यष्टि अथवा समष्टि–जीवन के विभिन्न स्तरों का उसके विस्तार और व्यापकता में प्रतिफलन होता है। वस्तुतः उपन्यास का लेखक और पाठक दोनों उसके माध्यम से अपने–आपको पाने का प्रयत्न करते हैं। अन्य साहित्य–रूपों की भाँति इसका लक्ष्य भी आत्म–तत्व की उपलब्धि है–साक्षात्कार है और यही मानव–जीवन की उच्चतम साधना है। संरचना के स्तर पर उपन्यास एक संश्लिष्ट साहित्य–विधा है। अपने विस्तार में वह अन्य किसी भी साहित्य–विधा को समेट लेने में समर्थ होता है। उपन्यास अपने इस संरचनागत लचीलेपन के कारण किसी भी अन्य विधा की परिधि में सहज ही प्रवेश कर जाता है।

संक्षेपतः उपन्यास के अनुवाद के विषय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना जरूरी है :– **1.** उपन्यास एक संश्लिष्ट साहित्य–विधा है और उसके अनुवाद में वे सारी समस्याएँ न्यूनाधिक मात्रा में आती हैं जो अन्य साहित्य विधाओं के तथा साथ ही साथ शास्त्र के – जैसे दर्शन, मनोविज्ञान आदि के संदर्भ में अनुवादक के सामने आती हैं। **2.** उपन्यास के अनुवाद में – चाहे वह सामाजिक हो, आंचलिक हो, ऐतिहासिक हो – सबसे बड़ी कठिनाई होती है– वातावरण के पुनर्निमाण की और इसके संदर्भ में स्रोत और लक्ष्य भाषाओं में जितनी सांस्कृतिक दूरी होती है उतनी ही अनुवाद में कठिनाई होती है। विदेशी परिवेश, भौगोलिक नाम, व्यक्ति–नाम, देश–काल–भेद; सांस्कृतिक अर्थछवियुक्त शब्द सभी वातावरण के पनुर्निर्माण में कठिनाई प्रस्तुत करते हैं। **3.** वैसे तो प्रायः हर शब्द के साथ कुछ छायाएँ जुड़ जाती हैं पर मूल कृति की अनेक अभिव्यंजनाएँ तो अनूद्य ही नहीं होती। उनमें भावग्रहण करके कथ्य और संप्रेष्य के अधिक से अधिक निकट पहुंचने का प्रयत्न अनुवादक को करना चाहिए। **4.** वाक्यों की संरचना के प्रति अनुवादक को अत्यंत सजग रहना चाहिए। उपन्यास का पाठक किसी भी कीमत पर यह बर्दाश्त नहीं करता कि उसके पढ़ने के प्रवाह में व्यवधान आये। अतः वाक्यों में तारतम्य, पूर्वापर क्रम और रवानगी का विशेष ध्यान रखना चाहिए। **5.** आर्थी दृष्टि से मूल के साथ अधिकाधिक निकटता और लक्ष्य भाषा की सहजता के प्रायः परस्पर–विरोधी लक्ष्यों की युगपत् सिद्धि में ही उपन्यास के अनुवादक की सफलता है। यदि अर्थ की दिशा और तीव्रता बनी रहे तो पर्यायों के यत्किंचित भेद से अनुवाद पर उतना असर नहीं पड़ता जितना लक्ष्य भाषा की सहजता पर आघात होने से।

<u>संदर्भ</u> :– 1. Rao, R. Raghunath : The Art of Translation, Bhartiya Anuvad Parishad, New Delhi, 1990.

2. Savory, Theodore : The Art of Translation, Jonathan Cape, London, 1969.

3. गुप्त, डॉ. गार्गी (सं.) : अनुवाद बोध, भारतीय अनुवाद परिषद, 1990.

4. शर्मा, लक्ष्मी नारायण : अनुवाद चिंतन – अनुवाद विज्ञान का सांगोपांग विवेचन, विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली, 1990.

◗ नगर एवं ग्राम नियोजन संगठन, ई. ब्लॉक, विकास भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली।

चिरजीवी महाकाव्य : एक अनुशीलन

❑ डॉ. बालशौरि रेड्डी

डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर हिंदी के प्रख्यात कवि, नाटककार, जीवनी–लेखक, पत्रकार तथा संपादक के रूप में सर्वविदित हैं। आपके द्वारा विचरित 'देवयानी', 'कुरुक्षेत्र गरजता है' – जैसी कृतियाँ हिंदी जगत में विशेष रूप से समादृत हैं। आपके द्वारा प्रणीत नवीनतम महाकाव्य 'चिरजीव' हिंदी महाकाव्यों की शृंखला में एक कड़ी है जो अपनी काव्यात्मक गुणवत्ता लिए हिंदी जगत के समक्ष प्रस्तुत है।

वैसे बीसवीं शती के अंतिम दशक में तीन–चार प्रबंध काव्य ही हिंदी में रचे गये हैं। 21वीं शती के प्रथम दशक में संभवतः यह तीसरा महाकाव्य है। डॉ. नायरजी ने विशेष–चिंतन, मनन एवं अध्ययन के पश्चात संभवतः इस महाकाव्य का कथानक ग्रहण किया है। इस काव्य में वर्णित विविध प्रसंगों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि डॉ. नायर ने पुराणों के साथ महाभारत, रामायण, भागवत् इत्यादि महान ग्रंथों का गहन अध ययन किया है और उनमें प्रतिपादित चिरजीवों को अपने काव्य का कथ्य बनाया है।

इस महाकाव्य की पूर्वपीठिका में डॉ. नायर ने अपने काव्य के इतिवृत्त पर प्रकाश डालते हुए उल्लेख किया है –

"पुराणों इतिहासों में प्रतिपादित / अतिप्रख्यात कथात्मक रचना / चिरजीवों के मार्मिक जीवंत–वर्णन / युग–युग से सुनते हैं / अश्वत्थामा बलिर्व्यासो / हनुमानश्च विभीषणः / कृपः परशुरामश्चः / सप्तेते चिरजीवनः।"

इन सात चिरजीवों को अपने काव्य का कथानक बनाने की प्रेरणा उनको इस कारण से प्राप्त हुई है कि वे आज भी किसी न किसी रूप में अपने चरित्रों को लेकर प्रासंगिक हैं – उन्हीं के शब्दों में – "आज कलियुग के अणुयुग में / भावरूप में वे पुराण–पुरुष / अंतर आया है विपुलाधिक / देखें, सह अस्तित्व वे देते हैं।"

प्रायः प्रत्येक महाकाव्य में किसी न किसी चिरंतन सत्य का अन्वेषण होता है। उस विराट सत्य का प्रतिपादन महान चरित्रों के माध्यम से ही होता है – इस काव्य की पृष्ठभूमि में एक महान व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया है –

"एक ही विराट पुरुष श्री कृष्ण / विराज रहे हैं चिरजीव कथा में / एकमात्र वे ही कथा नियामक / एक मात्र वे ही शुभ पर्यवसायी।"

महाभारत युद्ध के पश्चात युधिष्ठिर जब निर्वेद में आकर राज्यभार को ग्रहण करने से विमुख हो जाते हैं, तब धर्मरक्षक श्री कृष्ण उनको उपदेशात्मक स्वर में समझाते हैं जिसमें महाकाव्य के सृजन का आदर्श प्रतिबिंबित है –

"आप राजा हैं अब देश के / देखो, मैं चाहता हूँ भारत / सारे संसार का रहे संपूज्य / एक राष्ट्र बनकर वह विराजे"

डॉ. चंद्रशेखर नायर ने इस महाकाव्य के प्रणयन में रीतिशास्त्र या लक्षण ग्रंथों के सूत्रों का अनुपालन किया है। वैसे महाकाव्य के अष्टादश लक्षण होते हैं उनमें सर्वप्रथम वाग्देवी या गणेश की वंदना होती है। तत्पश्चात कवि अपने आराध्य देवी–देवताओं की स्तुति करके महान कवियों के प्रति अपनी श्रद्धा–भक्ति निवेदित करते हैं। डॉ. नायर ने प्राचीन काव्य रीतियों का अनुसरण किया है जो काव्य के आरंभिक चार छन्दों में वर्णित है। उन्हीं के शब्दों में सुनिये –

"वर दें कृपा करें गणेश भगवान / अति पवित्र कथा चिरजीवों की / मन भावन की रचने दे विभा / अति विनम्रता है दया निध ाान।"

तदनंतर विद्या की अधिष्ठात्री देवी वाणी की वंदना करते हैं। वे सरस्वती को अक्षरेश्वरी नाम से संबोधित कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि उनका सृजन सफल हो, जो उनके हृदय में विराजमान है –

"माँ चेतना रूप अक्षरेश्वरी / मम हृदयस्त पूज्य माहेश्वरी / अमंद उत्साह दें, रच लूँ, नूतन महागान।"

कवि ने यहाँ पर अपने महाकाव्य को 'महागान' नाम से अभिहित किया है।

इसके पश्चात अपने आराध्य श्रीराम चंद्र से निवेदन करते हैं बड़ी विनम्रता के साथ –

"देव श्रीराम धर्मपुरुष करुणामय / रचने दें नूतन चिरजीव कथा–विधान / हे जानकीपति! इस काव्य को / कलियुग की अमृतकथा बनने दें।"

फिर आचार्यों के आशीर्वादों की अभिलाषा करते कहते हैं –"मंगलाशंसा दें, गुरुजन कविजन / विशेषकर व्यास देव भगवान महाकवि / अविनय यह कर रहा हूँ रचने का / महाकाव्य चिरजीवों का श्रमकर।"

इस प्रकार डॉ. नायर ने अपने काव्य के सृजन के पूर्व रीतिशास्त्र के पारंपरिक विधि–विधानों का पालन किया और अपने सृजन की सफलता की अनुशंसा करने के लिए प्रार्थना की – जो कवि की श्रद्धा–भक्ति का परिचायक है।

युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त भारत भूमि में शांति एवं अहिंसा का आह्वान कराते हुए कवि ने कृष्ण के मुंह से जो संदेश दिलवाये हैं, वे स्मरणीय हैं – श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को धैर्य दिलाते हुए आशा करते हैं कि भारत में फिर आगे कभी युद्ध न रहे और वे स्वयं कृष्ण द्वैपायन बन महाभारत कथा का निर्माण करेंगे जिस काव्य का आस्वादन सारा जगत करे और अंत में वे भारत के स्वर्णिम भविष्य की ओर संकेत करते हुए कहते हैं –

"मैं इस आर्स भूमि का/आत्म तत्व हूँ, ब्रह्म हूँ/बना दूँगा अणु शक्ति का/मानव मंगल रूप जगत को।"

कवि यहां पर भूतकालीन स्थितियों की विद्रूपताओं पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान में प्रलयंकारी अणुशक्ति को मानव के लिए कल्याणकारी बनाने का आश्वासन देते हैं।

डॉ. नायर ने 'चिरजीव' महाकाव्य के कथानक में सात चिरजीव महापुरुषों के गुण–दोषों पर प्रकाश डालते हुए उनके महिमामण्डित व्यक्तित्व पर बल दिया है। द्रोणाचार्य के पुत्र के रूप में अवतरित अश्वत्थामा अपने पिता से धनुर्वेद का मर्म जानकर गर्वित हुए। ब्रह्मसिरा का दिव्याश्त्र पाकर अनुभव करने लगे कि वे कुरु–राजकुमारों से भी कहीं उन्नत हैं। उसने पांडव–वंश का नाश करने के लिए अपने ब्रह्मसिरा अस्त्र का प्रयोग किया, किंतु श्री कृष्ण के हस्तक्षेप से वह विध्वंस के स्थान पर भावी कल्याण का कारक बना। विश्व नियामक कृष्ण के पूर्व समायोजित कर्तृत्व के कारण अश्वत्थामा चिरजीव बना।

डॉ. नायर ने इसी क्रम में ध्वंस की ओर संकेत करते हुए वर्तमान के इस इलक्ट्रॉनिक युग में अणु आयुधों का प्रयोग आत्मनाशकारी कहा है। यहाँ तक कवि कहते हैं कि उनके निर्माण का संकल्प भी अधर्म है। किंतु, साथ ही कवि का कहना है – "बनावे आट्टम का साधन / जिससे होते मानव कल्याण / जिससे बने स्वर्ग संकल्प / और भूपर स्वर्गविधान रचे। चिरजीव अश्वत्थामा को आधुनिक युग के स्रष्टा व्यासदेव बने और मानव जीवन में शांति और अहिंसा का साम्राज्य प्रवर्तित हो। फिर वे यह भी संकल्प करते हैं कि ईश्वर विश्व को एक नव्य–परिवार का रूप प्रदान करें। विश्व में दारिद्रय न हो, रंग भेद न हो। जाति और धर्म में अंतर न हो, विश्वास मानव का आभूषण बने, मानव विश्व नागरिक बने।

इस प्रकार कवि सुंदर और कल्याणकारी समाज की स्थापना का स्वप्न संजोये अपना काव्यादर्श उद्घाटित करते हैं जिसे आप उन्हीं के शब्दों में सुनिये :

"मैं कलियुग का कवि मामूली/देखता हूँ इस युग में भी प्रणाली/बदला लेने की भावना में चिरलीन/मानव स्पंदित है प्रतिपल।"

आगे आत्मपरिचय देते हैं –

"मैं स्वयं बना हूँ मानव चिरजीव/उक्त चिरंजीवों का वंशज मानव/मुझमें समा हुआ है अश्वत्थामा/मुझ में जीवित रहते हैं सातों चिरजीव।"

आगे चिरजीव महाबलि का परिचय कराते हुए उनको कवि अपनी मातृभूमि केरल के साथ जोड़ते हैं –

"अब केरल के जन वीर महाबलि का/प्रतिवर्ष सानन्द स्वागत करते हैं/अपने महोत्सव ओणम के अवसर पर/उनका आगमन शुभदिन है हमारा।"

इसके पश्चात् वे महाबलि के शासन की सुव्यवस्था और महाबलि के प्रजा के प्रति औदार्य का वर्णन कर उनके भाग्य की सराहना करते हैं क्योंकि शेषशायी भगवान उनके समक्ष बावन अंगुल का वटु बनकर खड़े थे। साथ ही केरलीय आज भी उनके दर्शन के लिए कैसे लालायित रहते हैं, उस ओर भी कवि इंगित करते हैं –

"बने चिरजीव महाबलि रहते हैं/इन्हीं गुणों से स्थिर हो जगत में/हम केरल के निवासी कविजन/लालाइत रहते हैं उनके दर्शन को।"

ऐसे वे महाबलि प्रभु के चरण गहकर मानवता के संरक्षक बने और साथ ही भूमि, स्वर्ग और पाताल के सम्राट बने।

चिरजीवों में पवनपुत्र हनुमान का जीवन अद्भुत माना जाएगा। रामचंद्र के प्रति उनकी प्रभुभक्ति, सेव्य–सेवक भावना का अद्वितीय उदाहरण है। दास्य भक्ति के प्रतीक बने हनुमान ने श्री रामचंद्र के साथ सुग्रीव की मैत्री करायी और सीताजी का अन्वेषण कर राम–कथा को परिपूर्ण बनाने में महती भूमिका का निर्वाह किया। परिणामस्वरूप रामचंद्रजी के राज्याभिषेक के उपरांत हनुमान को सीताजी के हाथों से बहुमूल्य रत्नहार दिलवाया, जब रामचंद्र जी स्वयं हनुमान से आग्रह करते हैं – "प्रिय भक्त माँगो वर जो भी"। इस पर हनुमान ने रामचंद्रजी से केवल यही वर माँगा – "प्रभुनाम जितना भी जपूँ अधाता नहीं, इसलिए तब तक जिंदा रहूँ मैं नाम रहे आप का"।

रामचंद्रजी 'तथास्तु बेटा' कहकर वरदान देते हैं – "तुम रहो भूतल में/चिरंजीव होकर कल्पान्त तक"।

इस प्रकार हनुमान जी चिरजीवों की पंक्ति में स्थान पा गये। डॉ नायर ने इस प्रसंग को अत्यंत रोचक ढंग से प्रतिपादित किया है।

लंकाधीश रावण के भ्राता विभीषण का व्यक्तित्व कवि के शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत है –

"चिरजीवों में विभीषण का नाम/विशेष लिया जाता है जगत में/वे अपने बंधुओं कुलाचारों से बढ़कर/धर्मनिष्ठ रहने के इच्छुक रहे थे।"

विभीषण सात्विक स्वभाव के थे और थे राम की महिमा से

परिचित। यही कारण है कि वे धर्म पक्ष का समर्थन कर राम के प्रिय बन जाते हैं। राज्याभिषेक के पश्चात् रामचंद्रजी विभीषण को विदा करते हुए आश्वासन देते हैं –

"आप प्रलयांत तक शासन चलाते रहें/मैं रहूँगा हमेशा आपके स्मरण में/आप संसार का उत्तम मिसाल हैं/जाति–धर्म देश से परे हैं/मेरे लिए परम प्यारे हैं/आप करें शासन प्रजा के लिए/कल्पांत में आकर मुझसे मिलें।"

अन्य चिरजीवों में कृपाचार्य का नाम भी उल्लेखनीय है। कवि का कथन है कि "कृपाचार्य भी अपने निजी विशेष व्यक्तित्व के बल पर चिरंजीव हैं।"

जमदग्नि–रेणु के पुत्र परशुराम ने क्षत्रिय दंभ हराकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। कवि कहते हैं –

"इस उग्र प्रतिज्ञा पालन के कारण ही स्वतः हुए। त्रेतायुग में श्रीरामचंद्र जी से तथा द्वापर में श्रीकृष्ण से उनकी भेंट हुई। अब कलियुग में भी उनकी स्मृति ताजा है। इसलिए वे चिरजीव हैं।"

डॉ. नायर का कथन है कि – परशुराम का केरल के साथ संपर्क रहा है – उन्हीं के शब्दों में –

"श्री परशुराम का संपर्क रहा केरल से/सुना है केरल को सृजित किया गया देव से/रहे यहां अनेक वर्षों तक किया परिष्कृत/ब्राह्मणों को दिया बनाकर पूरा संस्कृत।"

आगे कहते हैं –

"कहा जाता है उन्होंने पूरे केरल में/एक सौ आठ देवग्रहों की स्थापना की/जहाँ आज कोटि–कोटि जन करते हैं/आराधना पाते हैं, सुखमय जीवन।"

इस प्रकार डॉ. नायर ने सात चिरजीवों के महान कृत्यों का विशद् चित्र एक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही, अनुक्रमणिका में इस काव्य में वर्णित 176 पौराणिक पात्रों की सूची दी है।

डॉ. नायर न केवल एक चर्चित रचनाकार हैं अपितु वे उच्च कोटि के चित्रकार भी हैं। उनके चित्रों की प्रदर्शनी राजधानी में भी लगायी गयी थी और कला प्रेमियों ने उनकी कला की मुक्त कंठ से सराहना की है।

आशा है कि विविध विधाओं के कुशल चितेरे डॉ. चंद्रशेखर नायर भविष्य में भी इस प्रकार की स्तरीय कृतियों का सृजन करके पाठक जगत में समादृत होंगे।

'ज्योति निकेतन', 26 वडिवेलुपुरम
वेस्ट मांबलम, चेन्नई–600033
दूरभाष: 044–24893095

होली का आगमन

❑ हितेश कुमार शर्मा

मौसम मादक हुआ हवा महकी–महकी है,
दूर आम की डाली पर कोयल चहकी है।
होली का आगमन हुआ है, मन आँगन में–
अंग उमंग तरंग सांस बहकी–बहकी है।

नभ में इन्द्र धनुष की सतरंगी चुनर है,
धरती के माथे पर फूलों की झूमर है।
गली मोहल्लों में रंग की बरसात हो रही–
रंगों से बच, इधर–उधर जाना दूभर है।

गीत गा रही हैं सुहागिनें बौराई सी,
कहीं–कहीं है आँख मिचौली शरमाई सी।
पीकर भंग अनंग हुए है कुँवर कन्हाई–
उजली–उजली धूप हुई है अलसाई सी।

होली के दिन शिकवे गिले नहीं होते हैं,
कुछ करते हैं नशा और पीकर सोते हैं।
रंगों में उल्लसित तरंगित मन मतवारे–
सद्बुद्धि सज्जन तो होश नहीं खोते हैं।

परिजन पुरजन सबके हाथ गुलाल सने हैं,
टेसू का रंग भर पिचकारी, सभी तने हैं।
हाथ और मुँह काले–पीले रंग–बिरंगे–
मस्ती में कुछ झूम रहे, कुछ बने–ठने हैं।

बेगाने तो दूर–दूर से ताक रहे हैं,
केवल अपने ही अपनापन आँक रहे हैं।
चहक रहे हैं कुछ तो, कुछ बिल्कुल गुमसुम हैं–
खड़े नयन में इक दूजे के, झाँक रहे हैं।

रंग–बिरंगी मतवारी होली आयी है,
बच्चे बूढ़े सबके ही मन को भायी है।
सबको शुभ हो होली का त्यौहार सलोना–
यही भावना प्रिय सुकामना मन भायी है।

गणपति भवन, सिविल लाइन्स,
बिजनौर–246701 (उ.प्र.)

'अग्नि सेतु'– एक विद्रोही की संघर्ष और वेदना गाथा

❑ नित्यानंद गायेन

वरिष्ठ लेखक, कवि, आलोचक श्री विष्णु चन्द्र शर्मा जी महज संस्मरण लेखक ही नहीं बल्कि अब्बल दर्जे के जीवनी लेखक भी हैं। विष्णु जी ने मुक्तिबोध, राहुल सांकृत्यायन, बाल गंगाधर तिलक और विद्रोही कवि काजी नजरूल इस्लाम जैसे महान हस्तियों की जीवनी लिखी है। मैंने हाल ही में उनके द्वारा लिखी नजरूल इस्लाम की जीवनी 'अग्नि सेतु' पढ़ी।

नजरूल इस्लाम आजीवन संघर्ष करते रहे और उनके इन्हीं संघर्ष ने ही उन्हें महान कवि बनाया। सच्चे देशभक्त, क्रांतिकारी, सैनिक, प्रेमी, पिता और इंसान के रूप में उन्हें दुःख और वेदना का ही सामना करना पड़ा। इनकी जीवनी पढ़ने के बाद फिर से स्मरण हो आता है कि कुंदन में चमक कैसे आती है। शर्मा जी ने कवि की जीवनी लिखने के लिए अपना तन–मन और धन सर्वस्व अर्पित कर दिया है।

बंगाल के बर्द्धमान जिले के चुरूलिया ग्राम में जन्मा एक बालक, जो कभी अपने नाटक दल का नायक रहा और अपने होश खोने तक वे नायक ही बने रहे। ब्रिटिश सेवा में भी नायक बनकर रहे। काजी नजरूल इस्लाम ने सिर्फ आजादी के लिए नहीं बल्कि उन्होंने सांप्रदायिकता के विरूद्ध भी विद्रोह किया। 'अग्नि सेतु' में शर्मा जी ने कवि की अब तक अज्ञात रही मानवीय संवेदनाओं के पहलुओं पर भी न केवल प्रकाश डाला है बल्कि उन्हें गहरे स्तर पर स्पर्श किया है।

नरगिस आसार खानम् उर्फ सैयदा खातून कवि का प्रथम प्रेम थी जिनसे कवि की शादी के कार्ड तक भी छप गए थे। किन्तु, मित्रों के तानों और उलाहना भरी बातें कवि के दिल में काँटे की तरह चुभ गई और दो प्रेमी मिलन से वंचित रह गए। कवि इस आघात से आजीवन उबर नही पाए। कृति के पृ. 107 और 109 में क्रमशः उनके द्वारा अपनी प्रमिका को लिखे पत्र और तीन पंक्तियों की कविता उनके मन में दबी हुई वेदना को उभार देता है – ''जानता हूँ कि मैं अभागा हूँ, मेरा आँगन में जाना वर्जित है, फिर भी मैं सजल नेत्रों से घर की ओर क्यों ताकता हूँ''। हर व्यक्ति जो प्रेमी है, विद्रोही है और अपने को संवेदनशील मानता है – उन सब की कहानी कहती है 'अग्नि सेतु'।

कवि नजरूल इस्लाम एसे अभागे व्यक्ति रहे जिन्होंने आजीवन सिर्फ खोया ही। पहले पिता, फिर घर, फिर प्रेम, पुत्र और बचपन के साथी – सब कुछ खोकर ही वे कवि बने किन्तु

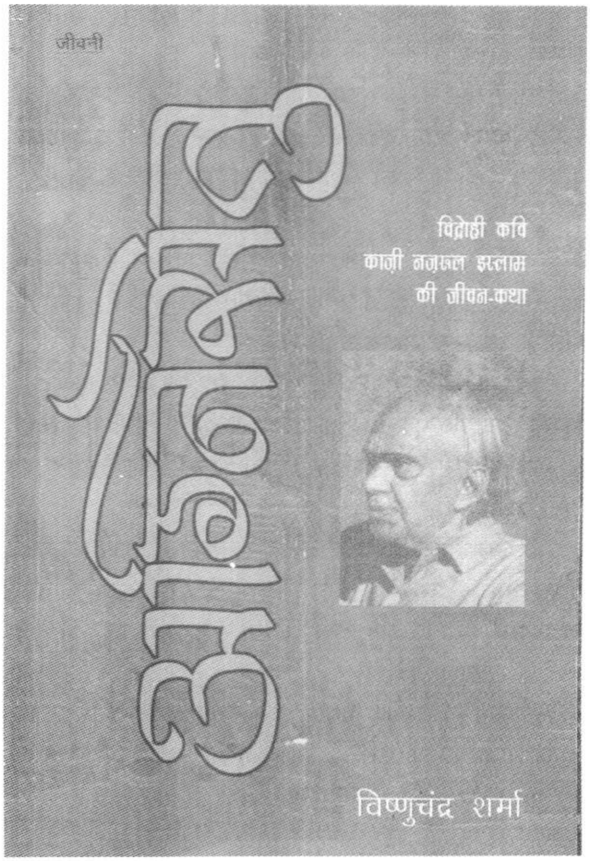

उन्होंने कभी भी हार नहीं मानी। हर क्षण संघर्ष करते रहे – कभी बाहरी दुनिया से तो कभी अपने आप से। कवि के पास रहने और खाने का कोई पक्का ठिकाना तो कभी नही रहा, फिर

भी कवि ने किसी भी तरह का समझौता आजीवन नहीं किया।

जब विश्व कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें शांति निकेतन में आकर रहने और वहां के छात्रों को जिम्नास्टिक की शिक्षा देने के लिए आमंत्रित किया तो भी कवि वहाँ नहीं गए क्योंकि वे अपनी अलग पहचान बनाना चाहते थे। शायद कवि होकर छात्रों को जिम्नास्टिक सिखाने वाली बात उन्हें नहीं जँची थी।

बुलबुल प्रसंग में शर्मा जी ने जान डाल दी है। कवि को जब जेल की सजा हुई थी तो उनकी कोठरी के पीछे स्थित बगीचे में एक पेड़ पर एक बुलबुल रोज आकर बैठता था। कवि और बुलबुल को एक–दूसरे से लगाव हो गया था। तभी एक दिन अचानक जब बुलबुल का आना बंद हो जाता है तो कवि बहुत उदास हो जाते हैं। उसी की याद में कवि ने अपने पहले पुत्र का नाम बुलबुल रखा। पर, दुर्भाग्य से कुछ समय बाद जब उनके पुत्र बुलबुल की मृत्यु हो जाती है तो ऐसा लगता है कि कवि जिस व्यक्ति या वस्तु से प्रेम करने लगते हैं वही उनसे छिन जाती है। बुलबुल की मृत्यु के समय कवि के पास न तो कब्र की जमीन और न ही मौलवी को देने के लिए पैसे होते हैं। बुलबुल मृत्यु से पहले जब चेचक से ग्रस्त रहा उस समय कवि एकदम पागल से हो जाते हैं और यहाँ तक कि जादू–टोना भी मानने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रसंग को मैं सर्वनाम के अपने अंक के 'खुला पन्ना' से जोड़कर देखता हूँ। विष्णु जी लिखते हैं – "एक दिन माँ ने कहा, "यहाँ मेरे गुरू हैं"। तो मैंने पूछा, "क्या चाहती हो"? एक मेरे सामने तू कुछ दान कर दे और पाँच गुरू–शिष्यों को भोजन करा दे। मैंने भीतर झाँककर अपने नास्तिक को देखा। फिर माँ की आंखों में झांका और कहा, "बुला लो"। पुष्पा चुपचाप मुझे एकटक देख रही थी। ठीक यही हालत कवि की भी उस वक्त रही होगी जब बुलबुल मरणासन्न था। 'अग्नि सेतु' में और भी कई प्रसंग गौरतलब हैं– जैसे देवघर में नजरूल इस्लाम आदि।

जीवनी की भूमिका में विष्णु जी ने कवि नजरूल के प्रति डा. रामविलास शर्मा के विचारों का तर्कसंगत खण्डन किया है। कवि नजरूल जीवन के अंतिम क्षणों में बेहद अकेले हो जाते हैं, यहाँ तक कि वे अपने को भी पहचान नही पाते। कृति के पृ. 27 का डायरी का पृष्ठ पढ़ने पर कवि की उस वक्त की स्थिति का ज्ञान होता है। कवि अपने को तब पहचान पाते हैं जब विष्णु जी कवि के चरण स्पर्श करते हैं और कवि की आँखें भर आती हैं।

समीक्ष्य कृति की भाषा प्रवाहमयी, प्रसंग बेहद मार्मिक और शैली प्रसादमयी है। कहीं–कहीं पाठक की लय टूटने का भी अंदेशा हो आता है पर तत्क्षण क्रम पटरी पर आ जाता है। निःसंदेह कृति हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

5–245, दीप्ति श्रीनगर कॉलोनी,
चन्द्रानगर, हैदराबाद।

अनूदित कवितांश

Stopping by woods in a snowy evening

❑ सुरेश काला

साग्रह रोक रही पग मेरे
नयनाभिराम वनश्री मनोहर–
"आ रे बटोही पल छिन
शीतल तरु छाया ले ले"
किन्तु वचनबद्ध हूँ मैं
मुझे तो चलते जाना है
हाँ, सोऊँ, इसके पहले मुझको
मीलों चलते जाना है।*

* उपरोक्त कवितांश प्रसिद्ध कवि Robert Frost की कालजयी कविता Stopping by woods in a snowy evening की अंतिम चार पंक्तियों

"The woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep"

का भावानुवाद है।

डी–1/ए–8, लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली–3

नक्सलवाद : समस्या और समाधान

❑ डॉ. जय प्रकाश खरे

भारतीय संविधान लोकतांत्रिक मूल्यों को मान्यता देता है तथा वह सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्ध है। संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय का ज़िक्र; मूल अधिकारों वाले भाग में समता, स्वतंत्रता, एवं शोषण के विरुद्ध अधिकारों की व्यवस्था तथा राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों वाले भाग में सबके लिए एक समान नागरिक संहिता की व्याख्या की गयी है।

संवैधानिक प्रावधानों का उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था बनाना था, जो मानव मात्र की गरिमा को उचित महत्व देता हो। वर्ण व्यवस्था पर आधारित पुरातन सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर नवीन सामाजिक व्यवस्था लाने के प्रति प्रतिबद्ध हो। परंतु दुर्भाग्य से भारत की राजनीतिक व्यवस्था को स्वार्थ की राजनीति ने डस लिया। जातिवादी ग्रंथि एवं सामंती शक्तियों ने देश के अधिकांश संसाधनों पर अपना नियंत्रण उत्तरोत्तर मजबूत कर लिया। परिणामस्वरूप, संविधान के आदर्श और सामाजिक न्याय मात्र संविधान, कानून की पुस्तकों, विचार–गोष्ठियों, सेमिनारों एवं जन–प्रतिनिधियों के भाषणों तक सीमित होकर रह गये, जिस कारण हमारे राष्ट्र निर्माताओं और संविधान के रचयिताओं के सारे सपने धूल–धूसरित हो गये हैं।

मनुष्य सभ्यता के विकास के समय से ही एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था करना चाहता रहा है, जो हर प्रकार के शोषण से मुक्त हो, जहाँ सबको विकास के समान अवसर प्राप्त हो सके एवं राष्ट्रीय संसाधनों के न्यायोचित वितरण की व्यवस्था हो। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि सभी को उनकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप विकास करने और समाज में उचित स्थान प्राप्त करने, सम्मान तथा गरिमा के साथ जीवन जीने का अवसर मिल सके। ऐसे समाज की रचना का ख्वाब देखना और उस ख्वाब को हकीकत में बदलना कोई सरल एवं सहज कार्य नहीं है विशेषकर, भारतीय समाज में! इसका एकमात्र कारण है कि नागरिकों की व्यक्तिगत सोच पर धर्म, जगत और सामाजिक परंपरा का गहरा प्रभाव है। समाज का वह समुदाय जिसके पास सामाजिक परिस्थितियों का लाभ उठाने की अक्ल एवं हुनर है और अपने इस हुनर से उसने जो सामाजिक और आर्थिक संसाधन अपने समुदाय विशेष के लाभ हेतु संग्रहित कर लिया है तथा अपनी सोच और आचरण की उपलब्धियों की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया है, वह अपने समुदाय के अतिरिक्त समाज के अन्य समुदायों के हितों पर विशेषकर सदियों से संसाधनों से वंचित लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों को क्यों मान्यता देगा, जिसकी कीमत पर ही उसने अपनी प्रतिष्ठा और समृद्धि का महल खड़ा किया है।

समाज के वंचित वर्ग जो अब भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं, की भी संवैधानिक और कानूनी हैसियत सुविधाभोगी सामाजिक वर्गों जैसी ही है। अब वह उनके शोषण और अत्याचार को स्वीकार क्यों करे? कहने का अभिप्राय यह है कि समाज में विभिन्न वर्गों के बीच तथा उनके एक–दूसरे के सामाजिक व्यवहार में संघर्ष जैसी परिस्थिति बन गई है वह वर्ग जो वंचितों को अधिकार देना नहीं चाहता, वंचित वर्ग अपनी इच्छाओं की संतुष्टि हेतु संविधान में वर्णित अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है परंतु उनके अधिकारों की रक्षा करने में शासन–प्रशासन प्रायः विफल हैं, तो कुछ लोग हिंसा के द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त करना चाहते हैं। हिंसक तरीके से समाज को बदल देना चाहते हैं, ऐसे लोग ही वामपंथी, उग्रवादी हैं, जो लोकतांत्रिक तरीके से अपनी समस्याओं का समाधान नहीं चाहते हैं और संकीर्ण वामपंथी व्यवस्था के आधार पर एक ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की रचना करना चाहते हैं, जिसमें समाज के संपन्न तबकों को समाप्त कर दिया जाये तथा अपने इस उद्देश्य को पूरा करने हेतु 60 के दशक से ही हिंसक संघर्ष में संलग्न हैं। उनका यह संघर्ष दिनानुदिन बढ़ता चला जा रहा है। संपूर्ण भारत का 90 हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्र नक्सलवादियों के प्रभाव में है, जो रेड कोरिडोर के नाम से जाना जा रहा है। नक्सलवाद का बढ़ता प्रभाव भारत की सुरक्षा के लिए आज सबसे बड़ा खतरा है। यह उद्गार भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने स्वयं व्यक्त एवं उजागर किया है। प्रश्न यह उठता है कि नक्सलवाद की समस्या, उत्तरोत्तर क्यों बढ़ती जा रही है, जबकि केंद्र तथा राज्य सरकारों ने समाज के हाशिए पर ढकेल दिये गये लोगों के उत्थान के लिए अनगिनत आर्थिक एवं सामाजिक योजनाएँ चला रखी हैं। निर्धनतम व्यक्तियों के उत्थान के लिए अंत्योदय योजना, ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए NREP, IRDP योजना, निर्धनों के लिए इंदिरा आवास, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था, गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए 60 वर्ष के पश्चात् वृद्धावस्था पेंशन, स्वास्थ्य बीमा योजना, भूमिहीनों के लिए भूमिपतियों से अतिरिक्त भूमि लेकर भूमि का वितरण जैसी अनगिनत योजनाएँ हैं। इन

योजनाओं को सफल बनाने के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता का बजटीय प्रावधान भी सुनिश्चित किया गया है। कुल मिलाकर सरकार ने वंचित वर्गों के हितों के लिए आर्थिक संसाधनों की पर्याप्त व्यवस्था की है। इन वर्गों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में संसद से लेकर ग्राम पंचायतों तक उचित राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी प्रदान किया गया है। सरकारी सेवाओं में भी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों को आरक्षण देकर इनका प्रतिनिधित्व निरंतर बढाने पर बल दिया जा रहा है। संक्षेप में, आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर इनकी सहभागिता की व्यवस्था होने के बावजूद अगर नक्सलवाद की समस्या पर काबू नहीं पाया जा सका, तो इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समाज में नक्सलवाद की समस्या का अभी भी अस्तित्व इसलिए है कि उक्त नीतियों का लाभ उन वर्गों को अब तक नहीं मिल पाया है, जिनको वास्तव में यह लाभ मिलना चाहिए था। यही कारण है कि इन वर्गों में जो असंतोष है, उसका लाभ उन लोगों ने उठाया है, जो समाज को लोकतंत्र की राह पर फलता–फूलता नहीं देख सकते और जो हिंसक तरीके से भारत की संवैधानिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं, जिनका यह दावा है कि लोकतांत्रिक तरीके से समाज के वंचितों वर्गों का विकास संभव नहीं है, उन्हें वामपंथी विचारधारा से जोड़कर ही वास्तव में सामाजिक न्याय प्राप्त हो सकेगा। चूँकि यह तबका राजनीतिक एवं सामाजिक उपेक्षा का शिकार है, इसलिए यह वर्ग उन लोगों के प्रभाव में आता जा रहा है जो उन्हें हिंसक तरीके से क्रांति करने के लिए निरंतर प्रेरित करते रहे हैं और उन्हें एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बनने को प्रेरित कर रहे हैं जो उनके साथ समानता का व्यवहार करेगी और मानवीय गरिमा के अनुरूप जीवन जीने की परिस्थितियाँ उपलब्ध कराएगी।

संक्षेप में, नक्सलवाद का अस्तित्व अभी भी इसलिए कायम है, क्योंकि गरीबी–उन्मूलन की सारी योजनाएँ हकीकत में कार्यान्वित नहीं हो सकी हैं। ऐसी योजनाएँ भ्रष्ट सरकारी सेवकों और दलालों के लाभ का साधन बन गई है। कानून–व्यवस्था लागू करने वाली मशीनरी प्रभावकारी तरीके से हिंसा में संलग्न लोगों पर नियंत्रण करने में विफल है। ऐसे जनप्रतिनिधि जो नक्सल प्रभावित क्षेत्र से जुड़े हुए हैं और जिनकी सामाजिक एवं पारिवारिक गतिविधि नक्सल प्रभावित क्षेत्र में ही है, वे अपनी राजनीतिक विजय को सुनिश्चित करने के लिए और क्षेत्र में सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए नक्सलवादियों की कृपा पर निर्भर है और अपने राजनीतिक भविष्य की सुरक्षा हेतु वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नक्सलवादियों का समर्थन करने के लिए विवश हैं। परिणामस्वरूप, नक्सलवाद पर काबू पाने के लिए सरकार एवं प्रशासन को इन जनप्रतिनिधियों से जिस सहयोग की अपेक्षा रहती है, वह सहयोग इन प्रतिनिधियों के द्वारा या तो नहीं मिल पाता या मिलता भी है तो आधे–अधूरे मन से, जिसका परिणाम यह हुआ है कि विशेषकर पुलिस प्रशासन नक्सलवादियों पर काबू पाने हेतु जिस राजनीतिक नेतृत्व के सहयोग की अपेक्षा करता है, उस वर्ग का नक्सलवादियों से निकट का संबंध उन्हें नक्सलवाद से लड़ने के प्रति प्रोत्साहित करने में विफल है। जितनी भी ग्रामीण योजनाएँ ठेकेदारों के माध्यम से चल रही हैं, वे ठेकेदार अपनी योजनाओं को सफल बनाने के लिए उग्रवादियों से सहयोग लेने के लिए मजबूर हैं। क्योंकि उनके सहयोग के बिना नक्सल – प्रभावित क्षेत्र में कोई भी विकासात्मक कार्य संभव नहीं है। नक्सलवादियों के इस सहयोग के बदले इन ठेकेदारों को लेवी के रूप में कुछ राशि निर्गत करनी पड़ती है। निर्गत राशि का प्रयोग नक्सलवादी आधुनिक हथियार इत्यादि खरीदने में करते हैं, जिससे उनके आर्थिक स्रोत निरंतर बढ़ रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में चल रहे छोटे–मोटे कल–कारखानों में पूँजीपतियों एवं व्यापारियों से नक्सलवादी लेवी वसूलते हैं। ग्रामीण जनता को अपनी सुरक्षा हेतु जिस पुलिस प्रशासन के सहयोग की आवश्यकता है, वह पुलिस प्रशासन नक्सलवादियों के खौफ से और उनके पास आधुनिक हथियार होने के कारण अपने आप को और ग्रामीण लोगों को सुरक्षा देने में असमर्थ पाता है। नक्सलवाद के मौजूद रहने का सबसे महत्वपूर्ण कारण उच्च्य जातियों का निम्न जातियों के प्रति अत्यंत रूखा व्यवहार है जिससे तंग आकर इन जातियों के बीच सामाजिक वैमनस्य एवं कटुता उत्पन्न हुई। 60–70 और 80 के दशक में ग्रामीण क्षेत्र में होने वाले अनगिनत जातिवादी संघर्ष, सामाजिक वैमनस्य के उदाहरण हैं, परिणामस्वरूप ये जातियाँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए नक्सलवादियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष तरीके से सहयोग एवं उपयोग करती हैं। जब तक सामाजिक स्तर पर जातिगत मतभेद रहेगा, जनप्रतिनिधियों की निर्भरता नक्सलवादियों पर रहेगी, सरकारी योजनाओं के कार्यान्वयन में भ्रष्टाचार का बोलबाला होगा, ग्रामीण विकास के लिए दिये जाने वाले आर्थिक संसाधनों और व्यापारियों से लेवियाँ वसूली जाती रहेंगी, ग्रामीण जनता और पुलिस प्रशासन के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं होगा, गरीब एवं निर्धन जनता के अधिकारों की रक्षा नहीं होगी तथा विकास की मुख्यधारा से जब तक उन्हें जोड़ा नहीं जाएगा, लोगों के बीच उचित शिक्षा का प्रचार–प्रसार नहीं होगा, लोगों को सुलभ एवं सस्ता न्याय शीघ्र प्राप्त नहीं होगा, भूमि–सुधार कारगर रूप से लागू नहीं होगा, जो नक्सलवाद के

जन्म के लिए मूलरूप से जिम्मेवार है। नागरिकों, विशेषकर वंचित वर्गों के मानवीय अधिकारों की रक्षा नहीं होगी और सामंती एवं जातिगत श्रेष्ठता की भावना से समाज का उच्च वर्ग मुक्त नहीं होगा। कुल मिलाकर जब तक राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र सच्चे अर्थों में स्थापित नहीं होगा, तब तक नक्सलवाद की मौजूदगी किसी न किसी स्तर पर अवश्य रहेगी। इसलिए यदि नक्सलवाद पर काबू पाना है तो सरकार को अपनी नीतियों की समीक्षा करने की आवश्यकता है। ग्रामीण स्तर पर विकास कार्यों को सुनिश्चित करने हेतु जन प्रतिनिधियों और ग्रामीण जनता की सहभागिता हर स्तर पर सुनिश्चित करनी होगी। स्थानीय स्तर पर बेरोजगारी को दूर करने हेतु नवयुवकों को उचित शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार प्राप्त करने के लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन मुहैया कराने की आवश्यकता है। ऐसे भटके नवयुवकों से संवाद करने की आवश्यकता है जो नक्सलवादियों से सहानुभूति रखते हैं और जो हिंसक तरीके से सामाजिक परिवर्तन करना चाहते हैं। उन्हें हिंसा के संभावित खतरों से सजग करना होगा।

लोकतांत्रिक, शांतिपूर्ण और गाँधीवादी दर्शन के महत्व को उन्हें समझाना होगा कि हिंसा की अपेक्षा शांतिपूर्ण एवं गाँधीवादी तरीके से सामाजिक बदलाव संभव है। उन उग्रवादियों को हिंसा छोड़ने के लिए प्रेरित करना होगा, जो हिंसा को त्यागकर समाज की मुख्यधारा में शामिल होना चाहते हैं। जो सिर्फ हिंसा की भाषा समझते हैं और जिन्होंने राजनीतिज्ञों एवं प्रशासनिक पदाधिकारियों से गठजोड़ कर सामाजिक न्याय के नाम पर हिंसा फैला कर ग्रामीण जनता, विकास में जुटे प्रशासनिक पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों, व्यापारियों, छोटे–मोटे उद्योगपतियों और ठेकेदारों से लेवी वसूल रहे हैं, उनसे अत्यंत सख्ती से निबटने की आवश्यकता है। कुल मिलाकर अगर वामपंथी उग्रवाद पर काबू पाना है तो सरकार को ऐसी व्यापक रणनीति पर कार्य करना होगा, जो संविधान में वर्णित आदर्शों को सच्चे अर्थों में स्थापित कर सके, वंचित वर्गों में पुनः विश्वास जगा सके कि संवैधानिक एवं शांतिपूर्ण मार्ग को अपना कर वे समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकते हैं और सरकार की जनकल्याणकारी नीतियों का लाभ उठाकर इज्जत और सम्मान के साथ जीवन व्यतीत कर सकते हैं। उन वर्गों को जो हिंसा का परित्याग कर सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार हैं, समाज की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है और ऐसे वर्गों के साथ सख्ती से निबटने की आवश्यकता है, जो भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों, आदर्शों, विश्वासों की हत्या कर भारतीयों को बराबर हिंसक व्यवस्था के अधीन बना देना चाहते हैं।

सरकार वामपंथी उग्रवाद पर तभी काबू पा सकती है, जब वह वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित राज्यों के बीच राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर बेहतर समन्वय स्थापित करे, खुफिया–तंत्र को मजबूत कर उग्रवादियों की गतिविधियों की सही जानकारी रखे, सामाजिक एवं आर्थिक विकास का लाभ सही हकदारों को प्राप्त हो। कुल मिलाकर सरकार को अपनी विश्वसनीयता जिसे वामपंथी उग्रवादियों ने तार–तार कर दिया है, स्थापित करने की जरूरत है एवं सरकार की विश्वसनीयता वंचित वर्गों का हृदय जीतकर एवं उच्च वर्गों की सामाजिक सोच में बदलाव लाकर ही हासिल की जा सकती है।

आओ गले मिलें

❑ नरेश हमिलपुरकर

आज नव वर्ष है, आओ हम गले मिलें।
हर उदास मन में, आनंद के फूल खिलें।।
नित निरंतर प्रगति के पथ पर हम चलें।
हर घर–आंगन में, प्रेम के ज्योत जलें।।
आओ असंभव को आज, संभव बनायें।
सुख–समृद्धि रहे सदा, ऐसे काम कर लें।
कल की चिंता छोड़ कर, आओ झूमें–गायें।।
शुभ ही शुभ होगा, सारी दुनिया देख लें।
भेद जाति, धर्म, भाषा, प्रांत के भूलकर;
हर गली गाँव में, खुशियों के सजायें मेले।
गैर यहाँ कोई नहीं, सारे भाई–बहन हैं;
आवो सारे देश को, एक परिवार बना लें।
द्वेष, घृणा हो, अहंकार आज अंत हो।
अज्ञान, आतंक का आज ही सूरज ढले।
एकता, अखंडता को बनाये रखेंगे हम
आज से दिखायेंगे हम, सारे जग से हैं भले।

संपादक : 'राष्ट्रीय बुलेटिन', भास्कर नगर, चिटगुप्पा, बिदर, कर्नाटक

ऑडियो–विडियो युग में साहित्य का अस्तित्व

❑ अरविन्द कुमार

आज सर्वत्र कला पर तकनीक व पूँजी हावी है। साहित्यकार, कलाकार व संगीतज्ञ आज मात्र बौद्धिक मजदूर भर रह गए हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं कि जिस साहित्यकार के साहित्य पर करोड़ों रुपये के व्यवसाय हुए वह जीवन भर आर्थिक तंगी में ही रहा। ऑडियो–वीडियो का सम्मिलित रूप टेलीविजन और सिनेमा है जिनमें साहित्यकार के लिए करने को मात्र पटकथा लेखन व गीत है। लेकिन आज जिस तरह के धारावाहिक व फिल्मों की मांग है वे व्यवसाय की दृष्टि से भले ही एकदम सही हो पर उनमें उम्दा साहित्य व साहित्यकार की भूमिका ही नदारद है। फिल्मी गीतों की हालत ऐसी है जैसे छुछुन्दर के सिर पर चमेली का तेल। भौंडे गाने पर पैसा पानी की तरह बहाया जाता है जबकि कितने ही श्रेष्ठ गीत कवि व गीतकार के कॉपी में ही दफन हैं। उन्हें कोई नहीं पूछता क्योंकि ऐसे गीत आज समाज में केवल सम्मान के पात्र भर रह गए हैं न कि व्यवसायिक महत्व के।

आज मनुष्य के पास न समय है और न ही साहित्य पढ़ने का धैर्य। खाली वक्त में वह या तो टी.वी. देखना पसंद करता है या सिनेमा। पढ़ने के नाम पर वह या तो अखबार पढ़ता है या पत्रिका जिसमें दुनिया भर की सूचनाएँ रहती हैं।

जीविकोपार्जन से सम्बद्ध काम के बाद मनुष्य के पास जो समय बचता है जिसमें वह कुछ मनोरंजन करना चाहता है या कुछ पढ़ना–सुनना पसंद करता है तो इस अंतराल में उपरोक्त चीजें ही उसे घेरे रहती हैं। उम्दा साहित्य तो साहित्यिक वृत्ति के लोगों की प्रवृत्ति के कारण बिकती हैं। जनसामान्य की साहित्यिक चेतना उस स्तर की नहीं है कि वह अच्छे साहित्य के प्रति आकर्षित हो। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि आज साहित्य पर बाजारवाद व पूँजीवाद हावी है। वही साहित्यकार आज लोकप्रिय हो रहा है या धन अर्जित कर रहा है जिसने बाजार में अपने को अच्छी तरह भुनाया है। अन्यथा 'जंगल में मोर नाचा, किसने देखा' वाली कहावत ऐसे साहित्यकारों पर सटीक बैठती है जिन्होंने अपने को बाजार में भुनाने में सफलता प्राप्त नहीं की। अब जब साहित्य पर बाजारवाद व पूँजीवाद हावी है तो साहित्य में भी बाजारूपन और बिकाऊपन आना स्वाभाविक है। किंतु एक हद के बाद ऐसी कृतियों को साहित्य कहना भी साहित्य का अपमान है।

"क्या होता है कहने से
अच्छी बात भर, ऐ शहर!
अच्छी बातों का यहाँ,
होता नहीं असर, ऐ शहर!"

—स्वरचित 'ऐ शहर!' महाकाव्य से।

अब जब अच्छे साहित्य का समाज पर असर नहीं हो रहा है तो लाजिमी है कि ऑडियो और वीडियो जिसमें टीवी, सिनेमा, रेडियो, कंप्यूटर व मोबाइल जैसे उपकरण व साधन शामिल हैं, के माध्यम से उद्यमी लोगों के सामने वही चीजें परोस रहा है जिसे लोग पसंद करते हैं। ऐसे उपकरणों व साधनों पर जो पूँजीवाद हावी है उसका उद्देश्य समाज से पैसा कमाना है, न कि समाज कल्याण। अतः ऐसे पूंजीवादी परिप्रेक्ष्य में जो साहित्य भी लिखा जाता है उसकी श्रेष्ठता क्या होगी?

"साहित्यकार अब अपने मन की लिखता नहीं,
बाजार की मानसिकता का कर रहा अनुसंधान, ऐ शहर!
साहित्यकार को पुरस्कार व पैसे की ऐसी दरकार
कि अब साहित्य बन गया हलवाई की दुकान, ऐ शहर!"

—स्वरचित 'ऐ शहर!' महाकाव्य से।

आज के ऑडियो–वीडियो युग में बिल्कुल उपरोक्त बातें सत्य सिद्ध हो रही हैं। यही कारण है कि श्रेष्ठ साहित्य–लेखन को आज एक प्रोफेशन के रूप में अपनाना बड़ा कठिन कार्य हो गया है। अर्थ जीवन का एक कटु सत्य है, जिसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती और आज के आर्थिक युग में बौद्धिक समाज क्यों कर चाहेगा कि वह तंगहाल व फटेहाल रहे? यही कारण है कि श्रेष्ठ साहित्य में व्यवसायिकता नहीं होने के कारण ऑडियो–वीडियो युग में तो इसे लिखा ही कम जा रहा है और अगर लिखा जा रहा है तो उसका उचित पारितोषिक साहित्यकार को नहीं मिल पाता। सरकार ऐसे साहित्यकारों को पुरस्कार के रूप में कुछ मदद अवश्य कर देती है, किंतु ऐसे पुरस्कारों से जीविका नहीं चल सकती। क्योंकि ऐसे साहित्य का बाजार नहीं है। यही कारण है कि आज के दौर में श्रेष्ठ साहित्य–लेखन को पूर्णकालिक अध्यवसाय के रूप में अपनाना बड़ा कठिन हो गया है। जब तक आर्थिक उपार्जन के लिए कोई दूसरा स्त्रोत न हो, गैर–व्यावसायिक होने के कारण श्रेष्ठ साहित्य लेखन एक कठिन काम है। आखिर व्यक्ति एक श्रेष्ठ जीवन के लिए ही कोई कार्य करता है। यदि उचित पारितोषिक न मिले तो कार्य तो प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में कहीं न कहीं प्रभावित अवश्य होता है।

किंतु श्रेष्ठ साहित्य लेखन कार्य मृत नहीं होगा, क्योंकि प्रकृति प्रदत्त यह कला सत्यजनित है। जब तक सत्य है श्रेष्ठ साहित्य लेखन भी रहेगा और प्रकृति में सत्य कर्म विनिष्ट नहीं होने वाला। समय इस बात का गवाह है कि प्रेमचंद, शरत्चंद, निराला व नागार्जुन जैसे साहित्यकारों ने दुःख व दरिद्रता झेलकर भी साहित्य की सेवा की और आनेवाले दौर में भी प्रकृति अपने साहित्यिक पुत्रों को जन्म देती रहेगी। यह सिलसिला खत्म नहीं होने वाला, चाहे माहौल कैसा भी हो।

'तवायफ के दर से बेहतर है गुलदस्त का' – इस सिद्धांत को मानने वाले मनीषी पैदा होते रहेंगे। चाहे उन्हें अपनी साहित्यिक कृति से कुछ प्राप्त हो या न हो, वे श्रेष्ठ साहित्य सृजन करते रहेंगे और प्रकृति ऐसे लोगों के पलने का भी इंतजाम करती है। मानवीय व्यवस्था के उपर कायनाती व्यवस्था है। सागर के तह में जहाँ मानवीय व्यवस्था नहीं, जीवन है। नभ में जहाँ मानवीय व्यवस्था नहीं वहाँ भी जीवन है। अतः ऐसे प्रकृति पुत्र पैदा होते रहेंगे जिनके पाठक भी होंगे, भले ही वे अल्प संख्या में ही क्यों न हों।

आज के ऑडियो–वीडियो युग में श्रेष्ठ साहित्य की भूमिका ऐसा नहीं कि बिल्कुल नगण्य है और बाजारवाद बिल्कुल इसके विपरीत है। अगर श्रेष्ठ साहित्य ऑडियो–वीडियो का सही उपयोग करे तो ऐसे साहित्य का जो बाजार है वह प्रेरित होगा जिससे श्रेष्ठ साहित्य इसके पाठकों तक पहुँच पाएगा और ऐसे साहित्य का भी वैश्विक महत्व दिखाई पड़ेगा। विज्ञापन के जरिए श्रेष्ठ साहित्य को लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। बहुत बार ऐसा होता है कि पाठक श्रेष्ठ साहित्य पढ़ना चाहता है, किंतु उसे जानकारी नहीं होती कि उसकी मानसिकता व काम की कौन–कौन सी किताबें बाजार में उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में ऑडियो–वीडियो श्रेष्ठ साहित्य के लिए वरदान साबित होंगे। अब वह युग न रहा कि किसी साहित्य की जनसामान्य को जानकारी देने भर में ही वर्षों लग जाता था। आज ऑडियो–वीडियो जनित मीडिया इतना सशक्त माध्यम है कि कुछ ही दिनों में पाठक को किसी किताब या साहित्य की सूचना उपलब्ध हो जाती है। कहने का तात्पर्य कि अब श्रेष्ठ साहित्य के लेखक को भी अपनी कार्यशैली में बदलाव लाना होगा कि वे मीडिया के माध्यम से उपयुक्त पाठकों के मध्य उपलब्ध हो सकें। जिस माध्यम से फूहड़ साहित्य बाजार में बेचे जा रहे हैं उसी माध्यम का उपयोग कर श्रेष्ठ साहित्य भी बाजार में अपनी पैठ बना सकता है। जनसामान्य की शिक्षा के स्तर में बढ़ोत्तरी होने के साथ–साथ श्रेष्ठ साहित्य भी कालांतर में अपना एक बाजार बना लेगा जो ऐसे साहित्यकारों को एक सुंदर जीविका का स्रोत दे सकेगा। किंतु अब वह समय नहीं कि आपकी सारी ऊर्जा श्रेष्ठ साहित्य के केवल लेखन में ही लगी रहे और प्रकाशक आपके साहित्य को बाजार में भुनाकर मालामाल हो जाएं। यदि साहित्यकार स्वयं इस क्षेत्र में पूँजी निवेश करें और सुंदर मार्केटिंग की व्यवस्था करें तो ऑडियो–वीडियो उनके लिए बड़ा ही उपयोगी साबित होगा। साहित्य में पूंजी–निवेश के संदर्भ में मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ– हैरी पौटर ऐसा नहीं कि अपने–आप में बिल्कुल अनूठा साहित्य है और ऐसा साहित्य हमारे भारतीय परिवेश में उपलब्ध नहीं है। हमारे भारतीय परिवेश में भी ऐसे साहित्य हैं जिस पर अगर हैरी पौटर की तरह पूँजी–निवेश किया जाए तो वह भी विश्व–विख्यात हो जाएगा और लाखों रुपये का व्यवसाय कर सकता है। किंतु हमारे देश में साहित्य पर पूँजी निवेश उस स्तर तक नहीं हो पा रहा है जिस स्तर तक विकसित देशों में हो रहा है। इसका कारण यह है कि एक तो हमारे देश के नागरिक उस स्तर तक पढ़े–लिखे नहीं हैं, जिस स्तर तक विकसित देशों मे लोग पढ़े–लिखे हैं। दूसरा हमारा देश गरीब है। लोगों का ज्यादा समय कमाने–खाने में ही बीतता है। उनके पास साहित्य पढ़ने के लिए समय नहीं है और न किताबों को खरीदने की सामान्यतः कूबत है। इन सब कारणों से आज श्रेष्ठ साहित्य का भारतीय परिवेश में ऑडियो–वीडियो युग में सही मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है न ही सही पूँजी निवेश इस संदर्भ में हो पा रहा है। इसी कारण अंग्रेजी का साहित्यकार एक अच्छा जीवन जीता है और भारतीय भाषाओं का साहित्यकार किसी अन्य स्त्रोत से सहारा लेकर सामान्यतः साहित्य सेवा कर पाता है और श्रेष्ठ साहित्य लेखन कुछ ही लोगों का पूर्णकालिक अध्यवसाय बन पाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि साहित्य मनुष्य की मौलिक आवश्यकता नहीं है। यह मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है, जो दैहिक व भौतिक आवश्यकता के बाद मनुष्य के लिए जरूरी है। हमारा भारतीय समाज आज के दौर में भोजन, वस्त्र व आवास की आवश्यकता के लिए ही जद्दोजहद कर रहा है। अतः ऐसे समाज में जहाँ प्राथमिकता ही दैहिक व भौतिक आवश्यकता की आपूर्ति है, साहित्य के लिए समय व साधन ही कितना है? दूसरी तरफ सुविधा–संपन्न राष्ट्र में साहित्य लोगों की जरूरत है और वहाँ साहित्य का मूल्यांकन भी सही हो पा रहा है। ऐसे देशों में साहित्य पर पूँजी–निवेश भी अच्छा हो रहा है और ऑडियो–वीडियो के माध्यम से विज्ञापित होकर वहाँ का साहित्य विश्व–व्यापी बाजार तैयार कर रहा है। ऐसे देशों का साहित्य हमारे भारतीय बाजार में भी बिकता है। किंतु हमारा भारतीय साहित्य नाममात्र को ही ऑडियो–वीडियो जनित विज्ञापन का लाभ लेकर विश्व बाजार में अपनी छाप छोड़ रहा है। आज भारत में यदि कोई साहित्यकार किसी बैंक से इस नाम पर कर्ज लेना चाहे कि उसे अपना साहित्य छपवाना है और विज्ञापित कर उसे बाजार में बेचना है तो मैं समझता हूँ कि बैंक सर्वप्रथम इस तरह का कोई कर्ज साहित्यकार महोदय को देने से रही। अगर कर्ज देगी भी तो अच्छा–खासा बंधक लेकर जो कि सामान्यतः अव्यावहारिक है।

सामान्यतः ऑडियो–वीडियो माध्यम का साहित्य के विज्ञापन हेतु उपयोग करनेवाला पूँजीपति वर्ग है, जो व्यवसायी है न कि साहित्य का पारखी। वह उसी साहित्य पर जोखिम उठाता है जो बिकाऊ हो। दूसरी ओर हमारा भारतीय साहित्यिक समाज जो सामान्यतः गैर व्यावसायिक मानसिकता का है और व्यवसाय के जोखिम को उठाने में सक्षम नहीं, अपनी ओर से पूंजी–निवेश कर ऑडियो–वीडियो के माध्यम से विज्ञापित कर अपने साहित्य को बेचने में दिलचस्पी ही नहीं लेता। यही कारण है कि भारत

में श्रेष्ठ साहित्य का न यथेष्ठ बाजार बन पा रहा है, न साहित्य अधिक संख्या में बाजार में बिक रहा है और न साहित्य का सही मूल्यांकन हो पा रहा है। जबकि विकसित देशों में साहित्यकार इस स्थिति में है कि अपने साहित्य को वैश्विक महत्व प्रदान कर रहा है तथा उनके साहित्य का सही मूल्यांकन भी हो पा रहा है।

एक गीत जब एक गीतकार लिखता है या एक साहित्यकार जब एक कहानी लिखता है तो कितने लोग इसे जान पाते हैं। किंतु वही गीत या कहानी जब किसी पुस्तक के माध्यम से लोगों के पास पहुँचती है तो जनसामान्य उसके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, वह उसकी चर्चा अन्य लोगों से करता है। उस साहित्य की आलोचना–समालोचना होती है और तब उस साहित्य की पब्लिक अपील पर निर्भर करता है उसका वैश्विक महत्व। अतः अधिक से अधिक लोग अमुक साहित्य के बारे में जाने– इस संदर्भ में ऑडियो–वीडियो का माध्यम एक वरदान है। कल्पना कीजिए कि किसी गीत की रिकॉर्डिंग होती है, कैसेट बनते हैं, सी.डी. बनते हैं और प्रसंगाधीन चलचित्रों के साथ समायोजित कर उस गीत को लोग देखते–सुनते हैं तो कितना अच्छा असर लोगों पर पड़ेगा? कहानी का यदि धारावाहिक बनता है तो साहित्य तुरंत–फुरत में लोगों के बीच लोकप्रिय हो जाएगा और तब उसका सही मूल्यांकन भी हो पाएगा। ऐसा हो भी रहा है जैसे भीष्म साहनी रचित 'तमस' मैंने टीवी पर देखी है। शरतचंद रचित 'श्रीकांत' को टीवी धारावाहिक के रूप में लोगों ने देखा जिसके कारण जो लोग नहीं भी शरतचंद को जानते थे वह भी जानने लगे। लोग उस पर चर्चा भी करने लगे। रामायण–महाभारत जैसी कथाओं पर टीवी धारावाहिक बनाए गए जिसने अच्छा–खासा व्यवसाय किया। अतः ऐसा नहीं कि केवल हल्के व फूहड़ साहित्य ही लोगों को रिझाते हैं। अनूप जलोटा जब सूरदास की पंक्तियों को गाते हैं तब कैसा समाँ बँध जाता है। जगजीत सिंह जब अच्छे शायरों के गजल गाते हैं तो कैसा भाव–विह्वल वातावरण बन जाता है। किंतु यह कटु सत्य है कि अब तक भारतीय साहित्य ऑडियो–वीडियो के माध्यम पर अपना अपेक्षित दखल नहीं रख पा रहा है, जिसके कारण आर्थिक, सामाजिक हैं न कि साहित्यिक।

सत्व, रज और तम। तीनों गुण में तम सबसे जल्द असर करता है, किंतु सत्व शनैःशनै। शराब का असर मनुष्य पर तुरंत दिख पड़ता है, किंतु दूध, धृत का असर शनैःशनै ही दिख पड़ता है। किंतु तम तुरंत नष्ट हो जाता है जैसे आकाश में धुआँ, किंतु सत्व निरंतर है वह विनिष्ट नहीं होने वाला, वह प्रकृति के पक्ष का है, ईश्वर के निकट है।

उपरोक्त दर्शन ऑडियो–वीडियो के माध्यम पर फूहड़ साहित्य व श्रेष्ठ साहित्य के साथ भी चरितार्थ होता है। न जाने कितने कानफोड़ू ,बेहूदा व भद्दे गीत ऑडियो–वीडियो के माध्यम से जनसामान्य के बीच आते हैं। कुछ दिन तो इसका असर साफ दिख पड़ता है। किंतु एक अंतराल के बाद शायद ही ये पुनः सुनने को मिलते हैं। किंतु आज भी पुराने गाने किसी न किसी अवसर पर सुनने को मिल ही जाते हैं और आज भी उनका एक वैश्विक महत्व है, आज भी इनके कैसेट बाजार में बिकते हैं। यह उदाहरण है कि अच्छे–सच्चे चीज में सत्य के कारण निरंतरता रहती है। जबकि सतही व नकली चीज तम के कारण कुछ देर के लिए ही लोगों को भ्रमित कर सकती है। किंतु सत्व पुनः प्रभावी होता है और उसकी निरंतरता बनी रहती है। अतः श्रेष्ठ साहित्य को ऑडियो–वीडियो माध्यम पर अपनी जगह बनानी होगी। यह समय की माँग है और धीरे–धीरे ऐसा हो रहा है। आज कई अच्छे गीतों व गजलों के कैसेट तैयार हो रहे हैं। अच्छी कहानियों पर धारावाहिक बनाए जा रहे हैं। किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में पूँजी के अभाव व व्यवसायिक दक्षता के अभाव में साहित्यकार ऐसा नहीं कर पा रहा है। किंतु , विकसित राष्ट्रों में साहित्य व्यवसाय का रूप लेती जा रही है। यही कारण है कि वहाँ के साहित्यकार का जीवन–स्तर भारतीय कलाकारों की अपेक्षा बहुत अच्छा है। हमारे यहाँ का साहित्यकार अभी भी सरकारी अनुदान व पुरस्कार की मृग–मरीचिका में फँसा हुआ है। जबकि विकसित राष्ट्र का साहित्यकार साहित्य के बाजार की तरफ ऑडियो–वीडियो के माध्यम से छाप छोड़ रहा है। किंतु आने वाले दिनों में बढ़ती साक्षरता व सुधरते जीवन–स्तर के माहौल में हमारा भारतीय साहित्यिक भी ऑडियो–वीडियो जनित माध्यम का सही उपयोग कर सकने की स्थिति में होगा। उस दिन ऑडियो–वीडियो पर छाया तम समाप्त होगा और कॉपी में का साहित्यिक सत्व धीरे–धीरे निकलकर ऑडियो–वीडियो जनित माध्यम से जनमानस पर जगह बनाता चला जाएगा। तब साहित्य का भी सही मूल्यांकन होगा और साहित्यिक को भी उनके श्रेष्ठ कामों का उचित पारिश्रमिक पाठकों से मिलेगा। वह दिन जरूर आएगा जब श्रेष्ठ साहित्यकार पुरस्कार व सरकार का भरोसा छोड़ साहित्य के बाजार की ओर रुख करेगा। ऐसा सुंदर दिन भी साहित्यकारों के लिए ऑडियो–वीडियो जनित माध्यम से ही आएगा।

तकियापर पानी टंकी के निकट,
पो. दीघा, पटना–12

❋ **अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन**:राजकीय जिला कृषि एवं औद्योगिक विकास प्रदर्शनी, एटा (उ.प्र.) तथा जिला प्रशासन के सहयोग से 14 जनवरी को आयोजित समारोह में अध्यक्ष के रूप में संबोधित करते हुए पद्मश्री डा. श्याम सिंह शशि ने कहा कि जहाँ हिंदी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन जरूरी है, वहीं हिंदी के अखबारों में अनावश्यक रूप से अंग्रेजी के शब्दों को ठूँसना भारतीय भाषा–संस्कृति के साथ खिलवाड़ करना है। उन्होंने कहा कि हिंदी वाले ही हिंदी के शत्रु बन गए हैं। काश! कोई आचार्य किशोरीदास जैसा शब्दानुशासक आज हिंदी का पथ–प्रशस्त कर पाता!....... उन्होंने समारोह के सूत्रधार, जाने–माने साहित्यकार तथा एटा जनपद के कुशल लोकप्रिय प्रशासक राजकुमार सचान 'होरी' के दोहों की प्रशंसा करते हुए हिंदी के स्वरूप को सही दिशा देने में योगदान करने के सुझाव भी दिए। समारोह में मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड; प्रख्यात पत्रकार उमाशंकर मिश्र, व्यंग्य लेखक डा. हरि सिंह पाल, डा. धुर्वेन्द्र भदौरिया के विशिष्ट वक्तव्यों के अतिरिक्त डा. शाहबुद्दीन नियाज मौहम्मद शेख (अहमदनगर, महाराष्ट्र), श्रीकृष्ण मिश्र (मैनपुरी), डा. यतीन्द्र तिवारी, डा. नयन, डा. अवधूत, राजकुमार भरत, हरपाल सिंह, श्रीमती पुष्पा सिंह, कुमारी शैलजा सिंह आदि ने सारगर्भित विचार प्रकट किए। परिचर्चा में प्रवासी भारतीय साहित्यकार डा. विजय कुमार मेहता (न्यूयॉर्क) तथा रोमा सिन्ती कलाकर्त्री श्रीमती कथरीना आदि द्वारा भारतीय वांग्मय–योगदान के संदर्भ भी दिए गए। डॉ. शशि ने कतिपय पुस्तकों का लोकार्पण भी किया तथा कुछेक लेखकों को अंग्रेजी लघुकोश की प्रतियाँ भी भेंट की गयी।

❋ **'भारतीय संस्कृति तथा सेवा धर्म का समकालीन संदर्भ' विषयक समारोह**:– भारत विकास परिषद, दक्षिण दिल्ली, ग्रेटर कैलाश शाखा द्वारा आर्य समाज मंदिर में 17 जनवरी को आयोजित समारोह में सभाध्यक्ष डा. श्याम सिंह शशि ने भारतीय संस्कृति तथा सेवा धर्म का समकालीन संदर्भ के विषय में विचार प्रकट किए। उन्होंने परिषद की ओर से विकलांगों व निर्धनों को ट्राइसाइकिल, सिलाई मशीन आदि प्रदान किया। समारोह में सर्वश्री वी.पी. अग्रवाल, बी.एम. अग्रवाल, विजय गुप्त, मसूर अब्दुल्ला, राधाकृष्ण ठाकुर, रवि गुप्ता, इंद्रसेन साहनी, मदन मलिक, डा. जी.पी. आजाद, श्रीमती शशि आजाद, प्रोमिला ग्रोवर आदि ने भाग लिया। डा. शशि ने यादराम वर्मा की पुस्तक का लोकार्पण भी किया।

❋ **''ईश्वर तो कण–कण बसे'' (रचयिता– डा. सुन्दरलाल कथूरिया) का लोकार्पण** डा. बालाशैरि रेड्डी की अध्यक्षता में आर्यसमाज मंदिर, जनकपुरी, दिल्ली में हुआ जिसमें मुख्य अतिथि डा. शशि, वरिष्ठ लेखक डा. परमानंद पांचाल, ओमप्रकाश भाटिया 'अराज', शिव कुमार शास्त्री, आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, विनोद बब्बर, भजन प्रकाश, सुधाकर जी, प्रो. वीरेन्द्र अग्रवाल, डॉ. श्याम लाल आदि ने विचार प्रकट किये।

❑ **उपेन्द्र नाथ एवं डॉ. मणिकांत ठाकुर**

❋ अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर 'अहिल्या नमन' के होली अंक का विमोचन एवं विचार दृष्टि के संपादक श्री सिद्धेश्वर प्रसाद सपत्नीक सारस्वत सम्मान से सम्मानित

आगरा स्थित साहित्यिक संस्थान समानान्तर के तत्वावधान में 'अहिल्या नमन' के होली अंक का विमोचन विचार दृष्टि के संपादक श्री सिद्धेश्वर द्वारा किया गया।

इस अवसर पर प्रकाशक महावीर धनगर एवं प्रधान संपादक नीरज निल ने लोकमाता अहिल्यावाई होल्कर को समर्पित मासिक पत्रिका की दिन–प्रतिदिन उपलब्धि के लिए सभी का आभार व्यक्त किया। मुख्य अतिथि एवं लोकार्पणकर्ता सिद्धेश्वर जी ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के दिन संसद में पेश होने जा रहे महिला आरक्षण (विधेयक) की विशेष परिस्थितियों पर प्रकाश डाला। तदुपरांत 'अहिल्यानमन' के द्वारा सपत्नीक सिद्धेश्वर जी को सारस्वत सम्मान की उपाधि से सम्मानित भी किया गया।

महिला दिवस पर महिला आरक्षण को वक्त का तक़ाजा बताते हुए डॉ. राजेन्द्र मिलन, अशोक अश्र एवं युवा–साहित्यकार डॉ. यशपाल सिंह 'पशोपश', शिव कुमार दीपक, दीपक श्रीवास्तव, विजय सारस्वत नितेश मिलन धनेन्द्र बघेल, बृज किशोर तिवारी (बंटी भाई), हरी सिंह 'हरी', मनोज श्रीवास्तव, श्यामवीर सिंह चौहान, डॉ. शेषपाल सिंह 'शेष', डॉ. रवि शर्मा, उमेश कुलक्षेत्र, रेनू 'यशोदरा', नविता गुप्ता, चारुमित्रा आदि साहित्यकारों ने 'अहिल्या नमन' पत्रिका एवं महिला दिवस पर अपने–अपने विचार व्यक्त कियें।

समारोह की अध्यक्षता डॉ. राजेन्द्र मित्तल ने की एवं संचालन डॉ. यशपाल सिंह 'यशोदरा' ने किया और आभार धनेन्द्र वघेल ने व्यक्त किया।

▼ **डॉ. राजेन्द्र मिलन,**
डॉ. यशपाल सिंह 'यशोदरा' आगरा–282006

बाँये से– डॉ. यशपाल सिंह 'यशोयश', अशोक अश्रु, श्री सिद्धेश्वर जी की धर्मपत्नी, सिद्धेश्वर जी, राजेन्द्र मिलन, महावीर सिंह धनगर, नीरज मिलन।

हिंदी के प्रति बढ़ती उदासीनता : कारण और निवारण

– **डॉ. परमानंद पांचाल**

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की केंद्रीय भाषा रही हिंदी, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धीरे–धीरे अपना वर्चस्व खोती जा रही प्रतीत होती है। ऐसा इसकी अंतर्निहित क्षमता, संप्रेषणीयता, और शब्द–सामर्थ्य में न्यूनता के कारण नहीं बल्कि उस भावना और सोच में निरंतर हो रहे ह्रास के कारण है, जो किसी राष्ट्र को संगठित रखने के लिए अपेक्षित है। आज अंग्रेजी की दासता की वह मानसिकता फिर सिर उठा रही प्रतीत होती है, जो ब्रिटिश शासन के समय कतिपय लोगों में थी। आजादी के बाद कुछ समय तक वह भावना दबी रही, धीरे–धीरे वह पीढ़ी जिसने आजादी के लिए संघर्ष किया था, त्याग और बलिदान दिया था, समाप्त हो गई और क्षेत्रीयता की भावना बढ़ती गई। स्वार्थ और संकीर्ण राजनीति के चलते राष्ट्रीय मुद्दे हाशिये पर चले गए। फलतः देश की एकता के प्रायः सभी घटक शिथिल पड़ते गए। राष्ट्र भाषा हिंदी भी उसमें से एक है।

भारत एक बहुभाषी देश है, किंतु देश को एक सूत्र में बांधने के लिए राष्ट्र के कर्णधारों ने जिस भाषा का चयन किया था, वह हिंदी थी। इसमें संदेह नहीं कि हमारे देश में कई भाषाएँ हिंदी से अधिक प्राचीन और समृद्ध हैं, किंतु वे एक सीमित क्षेत्र की भाषा होने के कारण पूरे देश की संपर्क भाषा के रूप में काम नहीं कर सकतीं। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की पहचान की और उसे स्वतंत्रता आंदोलन का सशक्त माध्यम बनाया। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को देश की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया और अनुच्छेद 351 में इसके समुचित विकास का दायित्व भी केंद्रीय सरकार को सौंपा गया।

भारत सरकार ने निःसंदेह समय–समय पर वे सभी कदम उठाए जो हिंदी को देश की राजभाषा के रूप में विकसित करने के लिए आवश्यक थे। तकनीकी और पारिभाषिक शब्दों के चयन और निर्माण के लिए वर्ष 1961 में तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो का गठन किया गया। 1975 में राजभाषा विभाग बनाया गया। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केंद्रीय हिंदी समिति गठित की गई, जिसके निर्णय मंत्रिमंडल के निर्णयों के समान होते हैं। प्रत्येक मंत्रालय और विभाग में संबंधित मंत्री की अध्यक्षता में हिंदी सलाहकार समितियों की भी स्थापना की गई, जो मंत्रालय में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के बारे में सरकार को सलाह देती है। यही नहीं, राजभाषा अधिनियम 1963 के नियम 4 के अधीन 30 संसद सदस्यों की एक संसदीय राजभाषा समिति भी गठित की गई जो निरंतर भारत सरकार के कार्यालयों का निरीक्षण कर राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। अब तक इसके आठ प्रतिवेदन आ चुके हैं और उनकी सिफपरिशें भी सरकार को भेजी जा चुकी हैं। चिंता की बात यह है कि इन सबके बावजूद हिंदी की जो स्थिति है, वह किसी से छिपी नहीं है। आखिर क्या कारण है कि आज देश की राजभाषा के प्रति लोगों में कोई उत्साह नहीं? हिंदी के प्रयोग के प्रायः सभी आदेश, कागजों तक सीमित रह गए हैं। हिंदी में लिखना तो दूर, हिंदी में बोलने वाले को छोटा और घटिया दर्जे का व्यक्ति माना जाता है। हिंदी की इस स्थिति को देखकर अकबर इलाहाबादी का वह शेर याद आता है जो उसने परमात्मा का नाम लेने वालों के संबंध में उपहास स्वरूप कहा था –

"हरीफों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में
कि अकबर नाम लेता है खुदा का इस जमाने में"।

आज यही स्थिति हिंदी का नाम लेने वालों की होती जा रही है। वे रूढ़िवादी, प्रगत विरोधी और पिछड़े हुए माने जाते हैं। आखिर क्या कारण है कि आजादी के 62 वर्षों के बाद भी हम हिंदी को व्यावहारिक और प्रयोग की भाषा नहीं बना सके हैं? राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग के आंकड़े केवल अनुवाद के बलबूते पर ही कागजों तक सीमित हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तो गंगा उल्टी ही बह रही है। जहाँ आजादी के बाद शिक्षा का माध्यम स्नातकोत्तर स्तर तक हिंदी और भारतीय भाषाएँ बनती जा रही थी, वहीं अब यह माध्यम उल्टा खिसक कर प्राथमिक स्तर पर भी नहीं रहा। पहली कक्षा से ही शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनता जा रहा है। क्या इसे हम हिंदी की प्रगति कहेंगे या अंग्रेजी की?

अंग्रेजी या किसी भी विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना बुरी बात नहीं है, किंतु वह मातृभाषा की कीमत पर नहीं होना चाहिए। गाँधीजी कहते थे कि बच्चे के विकास के लिए मातृभाषा का ज्ञान उतना ही आवश्यक है, जितना माँ का दूध। क्या हम प्राथमिक स्तर पर बच्चे को एक विदेशी भाषा अंग्रेजी में शिक्षा देकर उसके विकास को अवरुद्ध नहीं कर रहे हैं? क्या हमें उसके व्यक्तित्व को बौना नहीं बना रहे हैं? बच्चा विदेशी भाषा को समझता नहीं, रटता है। सभी शिक्षा शास्त्रियों ने इस संबंध मे समान विचार व्यक्त किए हैं।

आइये, हम हिंदी के प्रति बढ़ती हीनता की भावना के कारण पर जरा ठंडे दिल से विचार करें। हिंदी आज विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। संसार में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली सबसे बड़ी भाषाओं में हिंदी का स्थान पहला है। हिंदी के लिए यह गौरव की बात है कि मंगल पर भेजे गए अंतरिक्ष यान पर ''भारत'' शब्द देवनागरी में ही अंकित किया गया। फिर भी, भारतीय मानस हिंदी को कोई प्रश्रय देता नहीं

दिखाई देता। अंग्रेजी मीडिया का तो हाल यह है कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसे राष्ट्रीय दैनिक (दैनिक–19 मई 2008) की प्रमुख पंक्ति ही लीजिए–वे "इंग्लिश इन इंडिया' के प्रचार से आरंभ होती हैं। यही नहीं, संपादकीय में भी अंग्रेजी के बढ़ते चरणों के ही कसीदे पढ़े जाते हैं, चूंकि माध्यम के रूप में वह यह भी स्वीकार करता है कि भारत में हिंदी माध्यम का चुनाव करने वाले छात्रों का स्थान प्रथम है और मराठी का दूसरा तथा अंग्रेजी का केवल तीसरा है। जहाँ हिंदी माध्यम लेने वाले छात्र वर्ष 2003–2004 में 49.5 प्रतिशत थे, वहीं वर्ष 2005–2006 में बढ़कर उनका प्रतिशत 52.2 प्रतिशत हो गया और अंग्रेजी माध्यम लेने वाले वर्ष 2003–2004 में केवल 4.3 प्रतिशत थे, उनकी संख्या का प्रतिशत वर्ष 2005–206 में 6.3 प्रतिशत हो गया।

अंग्रेजी के व्यापक प्रचार के कई कारण हैं :

आज शिक्षा ने एक उद्योग का रूप ले लिया है और अंग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलों की बाढ़ सी आ गई है। क्या शहर, और क्या गाँव, गली–गली, कूचों और मुहल्लों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल कुकुरमुत्ते की भाँति फैलते जा रहे है। लाभ के इस उद्योग में पूँजीपति ही नहीं विधायक, सांसद और जनप्रतिनिधि भी कूद पड़े हैं। फिर अंग्रेजी के इस फैलाव को कौन रोके? किसी उद्योग को बंद कराना, जिसमें जन प्रतिनिधियों का भी स्वार्थ हो, आसान नहीं है। करियर में अंग्रेजी के सब्जबाग दिखा कर बच्चों को सरकारी स्कूलों की बजाय इन स्कूलों में दाखिला लेने के लिए प्रेरित और आकर्षित किया जाता है। विज्ञापन और प्रचार पर निवेश किया जाता है। यही मृगतृष्णा छात्रों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की ओर आकर्षित करती है। माँ–बाप अपनी गाढ़ी कमाई का अधिक भाग इन पर लगा रहे हैं, कर्ज भी ले रहे हैं। उच्च शिक्षा के नाम पर देश का पैसा विदेशों में जा रहा है। प्रतिभा–पलायन भी हो रहा है। किसी ने ठीक ही कहा है कि हम विदेशों में सेवा के लिए ही बच्चे पैदा करते हैं। यह 'गिरमिटिया प्रथा' का एक प्रकार से नया संस्करण ही है।

भारत सरकार की कोई स्थिर शिक्षा नीति न होना भी एक बड़ा कारण है। शिक्षा में सुधार के लिए बनाए गए सभी शिक्षा आयोगों ने प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर प्रायः भारतीय भाषाओं को शिक्षा माध्यम बनाने पर जोर दिया था, किंतु हुआ यह कि अल्प संख्यक समुदाय की भाषा की आड़ में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल बढ़ते चले गए। 1948 में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने अपने अध्याय 2 के अनुचछेद 44 में कहा कि "अंग्रेजी शिक्षा ने भारत के अतीत की अवहेलना की और कहीं–कहीं तो हमें हमारी जड़ों से ही काट दिया।" उसने आगे कहा कि विगत की तरह अँग्रेजी राजभाषा नहीं बनी रह सकती। अँग्रेजी का प्रयोग तो लोगों को दो राष्ट्रों में विभक्त करता है, मुठ्ठी भर वे लोग, जो शासन करते हैं और बहुत सारे वे लोग, जिन पर शासन किया जाता है। यह लोकतंत्र के विरुद्ध है (पृ.316)। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) ने भी मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया था। डॉ. कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग ने कहा था, "क्षेत्रीय भाषाएँ क्षेत्रों में शिक्षा का माध्यम हों, हिंदी संपर्क भाषा हो और अंग्रेजी लायब्रेरी भाषा के रूप में पढ़ी जाए।" उसने स्पष्ट कहा था कि अंग्रेजी का स्थान राष्ट्रभाषा का नहीं हो सकता। आश्चर्य यह है कि हिंदी माध्यम की पुस्तकें तैयार करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वित्तीय सहयोग से विश्वविद्यालयों में जो प्रकोष्ठ स्थापित किए गए थे, उन्होंने भी शिथिलता बरती। हिंदी में पुस्तकों ही उपलब्ध नहीं हो पाई। पाठ्य–पुस्तकों में हिंदी शब्दावली में एकरूपता का न होना भी हिंदी माध्यम के मार्ग में एक बाधा थी। प्रसन्नता की बात है कि मातृभाषा विकास परिषद्, दिल्ली द्वारा उच्चतम न्यायालय में दायर एक जन–हित याचिका पर उच्चतम न्यायालय द्वारा जो निर्णय दिया गया है, वह उत्साहजनक है। इसमें सरकार को आदेश दिया गया है कि तकनीकी तथा वैज्ञानिक शब्दावली आयोग द्वारा तैयार शब्दावली का ही प्रयोग पाठ्य–पुस्तकों में किया जाए। इससे शब्दावली में एकरूपता बनी रहेगी।

हिंदी और भारतीय भाषाओं को एक बड़ा झटका तब लगा जब ज्ञान आयोग के अध्यक्ष माननीय श्री सैम पित्रोदा जी ने अंग्रेजी को पहली कक्षा से अनिवार्य बनाने की सिफारिश कर दी। इसने अंग्रेजी के वर्चस्व और भारतीय भाषाओं की अनुपयोगिता को और हवा दे दी। उन्होंने देश की राजभाषा की समृद्धि के लिए कुछ भी नहीं कहा।

आश्चर्य है कि देश के प्रबुद्ध शिक्षाशास्त्रियों और भाषा विशेषज्ञों ने इसके विरुद्ध आवाज क्यों नहीं उठाई? क्या गाँवों और शहरों की झोंपड़–पट्टियों और समृद्ध लोगों की कालोनियों में समान स्तर पर अंग्रेजी की शिक्षा देने में देश समर्थ है। यदि नहीं, तो अंग्रेजी के नाम पर यह असमानता क्यों पैदा की जाती है? उच्चतम न्यायालय भी भारतीय भाषाओं के विकास की दिशा में मौन है। अब कोई गाँधी जैसा महापुरुष दिखाई नहीं दे रहा, जो हमारा सही मार्ग–दर्शन कर सके। उन्होंने 9 जुलाई 1938 के हरिजन में लिखा था कि यह निर्णय करना शिक्षाशास्त्रियों का काम नहीं है कि किस स्थान के बालक–बालिकाओं को किस भाषा में शिक्षा दी जाए। उनका काम यह भी तय करना नहीं है कि क्या–क्या विषय पढ़ाए जाएँ। यह सब निर्भर करता है उस देश की आवश्यकताओं पर। सरकारी आँकड़े बताते हैं

कि पढ़ाई को बीच में छोड़ देने वाले छात्रों की संख्या 90 प्रतिशत तक है। इसका प्रमुख कारण बच्चों का अँग्रेजी में फेल होना और शिक्षा से जी चुराना भी है, जिस पर शिक्षा विशेषज्ञ ध्यान ही नहीं देते। अँग्रेजी जबरन थोपकर हम बच्चे को कैसे ज्ञानवान बना सकते हैं? यह भी किसी से छिपा नहीं है कि अनेक बच्चे अंग्रेजी के कारण हीनता की भावना के शिकार हो जाते हैं और आत्महत्या तक कर लेते हैं। डॉ. यशपाल और डॉ. कुलकर्णी जैसे विज्ञान विशेषज्ञ मानते हैं कि विज्ञान की शिक्षा बच्चे को उसकी अपनी भाषा में सबसे अधिक अच्छी प्रकार दी जा सकती है। हम अधिक समय तो शिक्षा के माध्यम को सीखने पर ही वयय कर देते हैं, विषय पर नहीं। हम ज्ञान–प्राप्ति की दृष्टि से केवल अंग्रेजी पर निर्भर करते हैं और उसके पिछलग्गू बने हुए हैं। हमारी राष्ट्रीय प्रतिभाएं कुंठित हो रही हैं।

हिंदी के प्रति उदासीनता का एक कारण यह भ्रम भी है कि कंप्यूटर आने से अब सारा काम–काज अंग्रेजी में ही होगा, जबकि कंप्यूटर की कोई भाषा ही नहीं होती। उस पर किसी भी भाषा में काम किया जा सकता है। जब कंप्यूटर का पदार्पण भारत में हो रहा था, हमने तभी इसे अंग्रेजी और हिंदी में साथ–साथ लाने का प्रयत्न नहीं किया। यदि केंद्रीय सरकार इसके हिंदी फोंट भी साथ–साथ उपलब्ध करा देती, भले ही कुछ समय और लग जाता तो कंप्यूटर पर केवल अंग्रेजी का ही वर्चस्व स्थापित न होता। किंतु अभी भी देर नहीं हुई है। कर्मचारियों को कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने के लिए प्रेरित किया जाए और कोई भी कंप्यूटर केवल अंग्रेजी के लिए न खरीदा जाए। स्थिति तो यह है कि अब कंप्यूटर की आड़ में फार्म आदि सभी अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराए जा रहे हैं। निजी क्षेत्र पर सरकार का कोई अंकुश नहीं है, जिससे कि वे भी राजभाषा नियमों का पालन करें। सरकारी उद्यमों और निगमों में से अनेक उद्यम अब निजी क्षेत्र में चले गए हैं। वहाँ अब उन्होंने भी हिंदी में काम करना और राजभाषा का पालन करना बंद कर दिया है। विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से वित्तीय सहायता मिलती है, वहाँ भी राजभाषा नियम लागू होने चाहिए और प्रशासन में केंद्रीय सरकार की भाँति हिंदी में काम होना चाहिए। केंद्रीय सरकार के नियमों के अनुसार नए खुलने वाले संस्थानों, कार्यालयों एवं योजनाओं के नाम पहले हिंदी में सोचे जाएं, फिर उनका रूपांतरण अंग्रेजी में किया जाए। ऐसा क्यों नहीं हो रहा है?

देश की उभरती हुई प्रतिभाओं के समुचित विकास के लिए और ज्ञान–विज्ञान को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए सबसे बड़ा काम यह होगा कि केंद्रीय स्तर पर एक "राष्ट्रीय अनुवाद अकादमी" की स्थापना की जाए, जो अंग्रेजी और विश्व की किसी भी प्रमुख भाषा में प्रकाशित ज्ञान–विज्ञान की नवीनतम उपयोगी पुस्तकों का सीधे और तत्काल हिंदी में अनुवाद करें, और उसे उच्च शिक्षा संस्थाओं को उपलब्ध कराया जाए, ताकि छात्र उसे तत्काल हिंदी में पढ़कर उसका उपयोग अपनी शिक्षा में करें। यह कार्य निरंतर चलते रहना चाहिए। इससे सभी छात्रों को मामूली बातों के लिए भी माध्यम के लिए अंग्रेजी की अधिक आवश्यकता नहीं रह जाएगी और वे माध्यम के बजाय विषय को जानने पर अधिक ध्यान दें पायेंगे।

विदेशों से आने वाले शासनाध्यक्षों, प्रतिनिधियों आदि के साथ होने वाली वार्ताओं में सरकारी स्तर पर, औपचारिकता के लिए ही सही, राजभाषा हिंदी का प्रयोग किया जाए और विदेशी मेहमानों की सुविधा के लिए ऐसे दुभाषिए की व्यवस्था की जाए, जो सीधा उनकी भाषा में अनुवाद कर सके। यह उस स्थिति में और भी जरूरी है, जब विदेशी मेहमान अपनी भाषा का प्रयोग कर रहा हो। इससे देश की गरिमा बढ़ेगी। मुझे याद है ऐसे सफल प्रयोग राष्ट्रपति भवन में, उस समय किए गए थे, जब ज्ञानी जैल सिंह जी भारत के राष्ट्रपति थे। वे कहते थे कि यदि हम ही अपनी भाषा का सम्मान नहीं करेंगे तो और कौन करेगा। अंतिम बात यह है कि हिंदी को रोजगार के साथ जोड़ा जाए। इसके लिए हमें उच्च शिक्षा संस्थाओं, प्रशिक्षण संस्थाओं और व्यावसायिक केंद्रों में शिक्षा का माध्यम हिंदी को बनाना होगा। न्यायालयों में भी हिंदी में बहस करने और निर्णय दिए जाने का विकल्प दिया जाए– तभी हिंदी की लोकप्रियता बढ़ेगी।

मगही कविता

नेताजी के दौरा

❑ उपेन्द्र नाथ

पोस्टरवा से पट गेलै
गाँवा के स्कूलवा–पंचइतवा
नेताजी आवेवला हखिन।
पप्पुआ पूछलकै संजैया से,
इ नेताजी उहे वाला हखिन की
जे दूसाल पहिले गाँवा में
कहलखिन हल
"गाँव के अलंग पर
सड़क बनेगा और शहर से जुड़ेगा।"
पर मटिये भरैला के बाद काहे
बरसातवा में अलंगवा औरो धँस गेलय
पोस्टरवा से गाँवा के स्कूलवा पंचायतवा पट गेलै।
फेर कहलकै पप्पुआ संजैया से
नेता जी सब के इहे काम है कि
बादा करके मुकरना
बेशर्मी से फेर बादा करना।
हम जा रहलिओ हे घरवा में सुत्ते
तोरा ढ़ोलवा सुनना हौ, तब सुन।

◗ बी–173, मधु विहार, उत्तम नगर, न.दि.–59

परिस्थितियाँ

❑ डॉ. रामगोपाल पाण्डेय

परिभाषित करती हैं, परिस्थितियाँ/रिश्तों को/रिश्ते कई तरह के होते हैं/सबको परिभाषित होना पड़ता है परिस्थितियों से/परिस्थितियों का ताना–बाना बुनता है/कभी छद्म, नक्कार बुनकर/कभी कबीर–सा सच्चा कर्मकार/कभी रविदास–सा संत चर्मकार/सबसे बड़ा रचनाकार/कुंभकार–सा होता है/गढ़ता ही जाता है, गढ़ता ही जाता है/एक निश्चित लक्ष्य को/केंद्रबिंदु बनाकर/बदकार के माथे पर झलमला आती हैं/पसीने की बूँदें/अपनी रचना के पीछे टटोलकर/अपना इतिहास/भूगोल का गड़बड़झाला/उसकी पहचान की पताका का पता होता है/परिस्थितियाँ कभी बाँझ नहीं होतीं/उनकी शाखाएँ – प्रशाखाएँ होती हैं/किन्हीं में रावणों के चरित्र होते हैं/किन्हीं में राम के/किन्हीं में निरपेक्ष के वृत्त होते हैं/किन्हीं में सापेक्ष के/परिस्थितियाँ पैदा करती है भुजंग भी/चन्दनवृक्ष भी।

परिस्थितियाँ/लेहड़ों में/अलग–अलग लगामों में/समीकरण पैदा करती हैं/विकास की धार देती हैं/विनाश की कारिस्तानियाँ भी/राम को वनवास भी/और/ भरत को राजगद्दी भी/राजगद्दी से इंकार भी/सत्यसंघ का संकल्प भी/नपे होते हैं/पहचानी परिस्थितियों के/जूते/अनपहचानियों के/बियॉण्ड नम्बर/बियॉण्ड नम्बर की विडम्बनाएँ/कि/श्रीकृष्ण के अधरों पर पांचजन्य रखवाती हैं/तो कभी बाँसुरी/कभी तो उनकी उँगली पर चक्रसुदर्शन को नचवाती हैं/परिस्थितियों के आयामों की इयत्ता नहीं/वे अनादि हैं, अनन्त भी/जैसे आकाश अनमापा है/वैसे ही ये अनमापी हैं/परिस्थितियों ने कई बार बनाए हैं/बगुलों को हंस, हंसों को बगुले/कौवों को कोकिल – कोयलों को कौवे/कई बार कर देती हैं परिस्थितियाँ/मूकों को वाचाल/वाचालों को मूक/बहरे सुनने लगते हैं/सुननेवाले हो जाते हैं बहरे/लँगड़े दौड़ने लग जाते हैं/धावक हो जाते हैं लँगड़े/परिस्थितियाँ करिश्माई होती हैं/कायनात भी इनकी/कयामत भी इनकी/पत्थर मत मारो/झड़ सकते हैं फूल/टूट सकते हैं कचगर फल/परिस्थितियों को गलबाँही दो/चुंबन भी/नाभि के जोर से उनका सामना करो/दीदार होंगे उनके/जो जरे–जर्रे में/अपने गर्भ में समग्र अस्तित्व/चुराए बैठा है – स्मित, स्फीत पूर्ण ब्रह्माण्ड/इनका गणित किसी गणितज्ञ के/माथे में नहीं अँटा आज तक/पूर्ण से निकलकर पूर्ण ही रहा जो आज तक/पूर्ण का परिकलन पूर्ण से/घटाव की कीमत पर घटा नहीं जो आज तक/परिस्थितियों के वृत्त होते हैं/छोटे–बड़े कई/केंद्रीभूत बिंदु उनका होता है/किंतु/एक/मात्र एक/समझना है, समझो/नहीं तो/गुरु कबीर के पास जाओ/उनके शब्दों में नहीं/अर्थ की चोली के अन्दर झाँको/झाँको और खूब झाँको/तब तक/अनहद की गंगा में नहा न लो/अर्थ पकड़ने में/शब्द फिसल जाते हैं/शब्दों पर पकड़ बनाने में/अर्थ बिलबिला जाते हैं/अनुभूतियों के आलम में/पैर रखते ही/मगर/दोनों के दीदार हो जाते हैं/तुम हो/तो/परिस्थितियाँ अक्स में अर्ज रहेंगी न?/उन्हें/बना लो अपनी माता/फिर दूध छककर पियो/और/पुष्ट मन, पुष्ट तन बन जाओ/पिशाचिनी परिस्थितियाँ/शिव की मांग करती हैं/हर हर की जटाओं में/हरहराती गंगा बन जाओ/खुदी को मिटाकर/खुद खुदा बन जाओ/परिस्थितियों के ऊष्मा भरे गर्भ से/श्रीराम आते हैं/श्रीकृष्ण आते हैं/बुद्ध तो कभी महावीर आते हैं/कभी प्रार्थना में हाथ मत जोड़ो/सिर्फ/शान्ताकार होकर/'भुजग–शयनम् की आदत बनाकर/परिस्थितियों को/गुनो, समझो, निपटो/और/निडर बनो/परिस्थितियों के समक्ष/एक आईना रख दो/जिसमें/उनको नहीं/अपने को देखो/तुम सत्–चित्–आनन्द हो/सच्चिदानन्द हो।

◗ **प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काजीपुर, पटना–4**

ग़ज़ल

❑ **आज़ाद कानपुरी**

हर कोई अपनी कमान पर तीर चढ़ाए बैठा है।
जिसको देखो अपराधी को बाप बनाये बैठा है।।
मन में कालिक लेकिन सबको ज्ञान बाँटता है ढोंगी।
वो अपने माथे पर चन्दन तिलक लगाये बैठा है।।
सूरत, भाषा, रंग रूप से कर लेता है आकर्षित।
चेहरे के ऊपर शातिर मुस्कान सजाये बैठा है।।
क़त्ल, अपहरण, झूठ सभी के ठेके लेता है वो भी।
संसद से मंदिर तक तो दुकान सजाये बैठा है।।
जिसको लूटा, जिसको चूसा पाँच साल तक वहशी ने।
आज उसी जनता पर अपनी आस टिकाये बैठा है।।
सारे करतब उसको सिर्फ गुलामों तक सीमित हैं।
हम 'आज़ाद' हैं हमसे अपनी आँख बचाये बैठा है।।

एल.आई.जी. 1144, आवास विकास–3, कानपुर–208017

संस्कृत के उन्नयन हेतु
बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना
के तत्त्वावधान में
28 एवं 29 दिसंबर, 2009

एवं 29 दिसंबर, 2009
संस्कृत संजीवनी